APRIL, 2002

ह्रीं

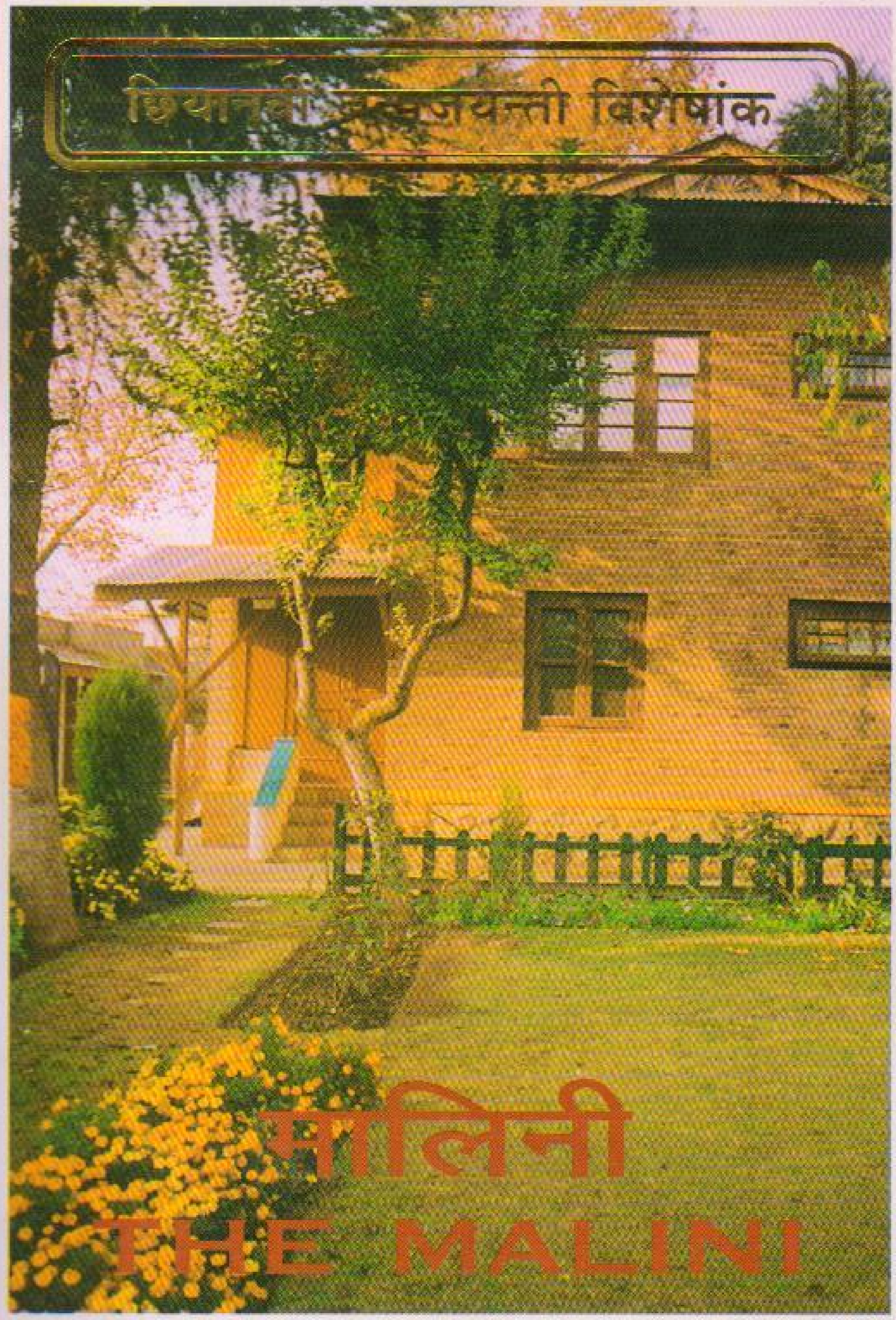

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VII NO. I ISSUE XXVIII
APRIL - JUNE, 2002

सद्गुरु जन्म जयन्ती विशेषांक

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar
New Delhi - 110 044
Tel. : 6958308
Telefax: 6974977

April, 2002
Special Issue Price : Rs.50.00
Yearly subscription : Rs.100.00
© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		3
1.	A Celestial Meeting	*Swami Laxman Joo in Kashmir — August 1997.*	7
2.	Swami Laxmanjoo Maharaj	*Capt. M. K. Kachru*	20
3.	देहस्थदेवताचक्रस्तोत्रम्	*भाषानुवाद–स्वामी लक्ष्मण जू महाराज* *Eng. tr. by : Sh. S. P. Dhar*	23
4.	Motherhood of God & Kashmir Shavistic Thought	*R. K. Sapru.*	29
5.	Obeisance to the Glorious Preceptor	*Pt. Jankinath Kaul*	39
6.	शिवचामरस्तोत्रम्	*Kashmiri rendering by Shri Damodhar Nehru English rendering by Shri S.P. Dhar*	40
7.	Importance of Tilak	*Shiban Ji Kaul*	47
8.	भारतमातृ-संदेशः Message of Bharat Mata.	*डॉ० बी० एन० कल्ला*	50
9.	दैव, पौरुष और आत्मबल– कश्मीर अद्वैत शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में	*डॉ. जगीरसिंह*	55
10.	कश्मीर शैवदर्शन में तत्त्वों का निरूपण	*डॉ. वीना कुमारी*	73

11. गौरी स्तुतिः — *भाषानुवादक स्वर्गीय नाथराम शास्त्री* — 73

12. श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिः — 84

13. उत्पलदेवुन संग्रहस्तोत्र — *श्री दामोदर नेहरू* — 86

14. सद्‌गुरुवन्दनम् — *श्री जानकीनाथ कौल 'कमल'* — 89

15. शैवाचार्य ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जुव — *पं० जानकीनाथ कौल 'कमल'* — 92

16. त्रिधारा — *श्रीमती नैना सपरू*
(क) मेरे सद्गुरु के चरण प्यारे प्यारे — 98
(ख) सद्‌गुरु भासतम हन्य हन्य — 99
(ग) मुख हावतम दुबारो — 99

17. सद्‌ग्वर सुन्द ज़न्म — *अनुपम कौल* — 100

18. Festivals & Rituals — *Administrative Office* — 114
वार्षिक त्यौहार व महोत्सव — 115

सम्पादक की लेखनी से

सद्गुरु महाराज की छियानवीं जन्मजयन्ती पर 'मालिनी' का यह जन्मजयन्ती विशेषांक प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। आज का यह विशेषांक स्वामी जी महाराज की पुनीत स्मृतियों का प्रतिबिम्ब है। मान्य भक्तों, सत् शिष्यों तथा साधकों ने जिन स्मृति चित्रों को अपनी लेखनियों से उकेरा है वे हृदयाकर्षक हैं। यथार्थ में स्मृतियों का अंकन तो विस्मृति के गर्त में डालकर न जाने कहां से कहां लेता है। पाठकों की स्मृतिज्वाला भी इस विशेषांक की स्मृतिझंझा से अवश्य ही उद्दीप्त होगी ऐसी पूर्ण आशा है। सद्गुरु महाराज की भव्य स्मृतियां हमारे उरस्थलों में विविध पुष्पों से सुरभित बयार के समान एक अनूठे वातावरण का निर्माण करेगी। यही कारण है कि इस विशेषांक में पहिले से चले आ रहे स्थायी दार्शनिक स्तम्भों का चित्रण न होकर केवल स्मृति चित्रों, कश्मीर भाषा में लिखे रेखा चित्रों, तथा भावविभोर करने वाली कविताओं आदि का ही चित्रण है। आज का यह दिन पावन दिन है। आज के दिन सभी प्रकार के उपासक, प्रेमी, साधक तथा शिष्य अपनी अपनी भावनाओं के अनुरूप विना कुछ प्रकट किये सुफलभोगी होते हैं। तात्पर्य यह कि आज के ही दिन विविध शास्त्रों के अभ्यासी पार्यन्तिक तत्त्व को, आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक परिपूर्णता को, मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुक्ति को, सांसारिक वैभव के आकांक्षी नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को, भक्ति कामी अचला भक्ति को, और सद्गुरु कृपावगाही गुरु कृपा को विना आयास के प्राप्त करते हैं। प्रायः पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - में से तीव्र इच्छा जिसकी जैसी होगी वह तदनुरूप उस इच्छा पूर्ति में, आजके विशेष दिन के माहात्म्य से, सफल होगा। हमारे सद्गुरुदेव संसारियों के कण्टकाकीर्ण मार्ग का शोधन करने में सदा कटिबद्ध हैं। अपने प्रेमियों के मनसा वाचा कर्मणा क्षेम विधान में निरत है। हे सद्गुरुदेव ! आप भक्तिरस के सर्वप्रधान आचार्य हैं अतः प्रेमपथ के पथिकों के मार्ग को भलीभांति जानते हैं। अपने भक्त के सजल नयनों को देखकर आपके नेत्रों से भी प्रेमाश्रु प्रवाह उमड़ता है, क्योंकि जिन उपादानों के सहारे से उनके हृदयों की आपने संरचना की है उनके निगूढ़ रहस्यों को भी आप ही जानते हैं। हे सद्गुरु ! इस अथाह संसार सागर में चारों ओर घनीभूत अन्धकार का साम्राज्य छाया हुआ है तथा वासनात्मक मगरमच्छों ने इस को दुस्तर बनाया है पर हमें आपकी सामर्थ्यशालिनी कृपा पर पूरा भरोसा है कि वह हमें डूबने नहीं देगी। आप साक्षात् कल्याणकारी शिव है, शुभ संकल्पों के तुरन्त साधक हैं, संसारियों को दीक्षा देने के लिए आतुर हैं, आप अभयंकर हैं, योगियों द्वारा योगदृष्टि से भी अगम्य है। आपके अपूर्व स्वरूप का चिन्तन सांसारिक विषयों में लीन हम जैसे मन्दबुद्धि किस प्रकार कर सकते हैं। सद्गुरु नाम रस के मत्तमधुप हम सद्गुरु के पाद कमलों पर मंडराने के विना ज्ञान-विज्ञान

की कलाओं से कैसे परिचित होंगे। हे नामामृत महोदधे ! आप तो स्नेह की पराकाष्ठा के परम तत्त्व हैं। अतः "विलुठति चरणाग्रेमोक्षसाम्राज्यसिद्धिः" अर्थात् आपके चरणों की अंगुलियों पर मोक्ष साम्राज्य की सिद्धि लुढ़क रही है। आज के पावन दिवस पर हे उद्धारक ! ऐसा उपाय कीजिए कि सांसारिक वैभव के खिलौने वने हम सभी का उद्धार हो। आप ही संसार के कल्याण के हेतु योगशास्त्र के मार्ग के प्रणेता और प्रवर्तक हैं। आप योग विधि द्वारा प्रत्येक परमाणु में व्यापकरूप धारण करके अपनी योगमाया से हम क्षुद्र सांसारिक जीवों की प्रतिक्षण रक्षा कीजिये, यही हमारी आर्त्तपुकार है। आइये आज के दिन हम सब मिलकर अपने सद्गुरु महाराज की गौरव गरिमा का शुद्ध भाव से गान करे ताकि हमारे समस्त अपराधों की समाप्ति होगी तथा हमारे योगक्षेम की तथा पूर्ण कल्याण की आशा सुदृढ़ बनेगी। जय गुरुदेव।

हम सब के लिए यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि आज दूसरे वर्ष हम दिल्लीवासी अपने नवनिर्मित सरिता विहार के आश्रम परिसर में सद्गुरु महाराज का यह जन्म जयन्ती महोत्सव धूमधाम से मना रहे हैं। यद्यपि पिछले वर्ष से आश्रम के निर्माण कार्य में अभी विशेष प्रगति नहीं हुई है तथापि हमारे अथक प्रयास में किसी प्रकार का शैथिल्य नहीं आया है और हम अपने दिल्ली शाखा के प्रबन्धक श्री अवतार कृष्ण गंजू के आभारी हैं कि वे अधिक व्यस्त होने पर भी आश्रम निर्माण के कार्य में कटिबद्ध हैं। हमें पूर्ण आशा है कि सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती पर आश्रम भवन का निर्माण कार्य शतशः सम्पूर्ण हुआ होगा और अमृतेश्वर भैरव मन्दिर के लिंग प्रतिष्ठा दिवस को महोत्साह से मनाया जायेगा जिसमें सारे भक्तगण, सत्शिष्य और उपासक आमन्त्रित किये जायेंगे।

अपने सद्गुरु महाराज के भव्य सन्देश को कोने-कोने तक फैलाना तथा साधारण जनता को सद्गुरु महाराज के उपदेशामृत से परिप्लुत करना ही ईश्वर आश्रम ट्रस्ट का परम ध्येय है। हमें अपने हृदय को टटोलकर यह प्रमाणित करना है कि इस परम ध्येयकी प्राप्ति में हम कहां तक सफल हो रहे हैं। यदि हम में कुछ खामियां हैं तो हमें उन खामियों को एकजुट होके दूर करने का प्रयास करना चाहिए ताकि हम अपनी सद्गुरु यशः पताका को जोर-जोर से फहराते रहेगें।

अन्त में हम उन दानवीरों को पुनः धन्यवाद देते हैं जो कार्य की प्रगति की अनदेखी करके अपनी दानवीरता का पूर्ण परिचय देते हैं।

समस्त ईश्वराश्रम परिवार को सद्गुरु महाराज ईश्वर स्वरूप की जन्मजयन्ती पर ईश्वर आश्रम ट्रस्ट की ओर से हार्दिक बधाइयां। जय गुरुदेव

प्रो. मखनलाल कुकिलू

वैशाख कृष्ण द्वादशी, 9 मई, 2002

A CELESTIAL MEETING

A conversation between Alice Christensen Rankin and Swami Laxman Joo in Kashmir — August 1997.

Laxmanjoo: I would like to tell you about the important points of Kashmir Shaivism . . . how it came into being . . . its various schools of thought.

Alice: How many schools of thought are there in Shaivism?

Laxmanjoo: There are four main branches in Kashmir Shaivism: the Krama System; the Kula System; the Pratyabhijnya System; and the Spanda System. The Pratyabhijnya System was founded by Somanandanatha. It is the school of "recognition." The second one is the Spanda System. Spanda deals with movement: movement of breath, movement of blades of grass, trees, atmosphere . . . anything. It explains how this movement began. The background of movement is a stationary point.

Alice: Would you say then that it deals with the source of movement?

Laxmanjoo: Not exactly, I mean that movement which is not moving, a sort of nonmoving movement. One-pointed movement. . The originator of this school was Vasu Gupta. This philosopy is explained in his treatise *Shiva Sutras*. The *Shiva Sutras* were not composed by Vasu Gupta; rather, they were revealed to him in a meditative state, and he merely wrote them down. The Pratyabhinya School is found first in the *Shiva Dhrishti*; after this came the *Spanda Karika* The *Spanda Karika* was actually composed by Vasu Gupta himself. It is an elaboration of the Shiva Sutras that were revealed to Vasu Gupta and inscribed on the big stone in Harwan [a mountainous area near Srinagar].

Alice: Then comes the Krama System?

Laxmanjoo: Yes . . . it deals with the background of time, space and form; what they actually are. Space, time and form are explained in the **Krama Shastra**. Actually there is no time, but since it seems to exist, we must try to explain what time is. Time is just a collection of various works. If you have no "work" at all, then you have no time. Time passes only when you have something "to do," like living, breathing, taking tea, going to some function or job. Time then passes. If you literally have nothing to do, time ceases. In the same way, if you have nowhere to go,

space ceases. You are then situated in your own point. So these three concepts of space, time and form are explained in the **Krama System**. Kundalini is also explained in this system. That, also, is Krama; it takes time and successive motion, so it is combined in this Krama System.

Alice: And the fourth?

Laxmanjoo: Yes, this fourth is called the Kula System. The Kula System deals with totality. You have to distinguish the individual within the universal.

Alice: This Kula doctrine, is it the doctrine of Abhinava Gupta's. All of them together form the Trika philosophy of Kashmir Shaivism. Trika philosophy means "The Three-fold Science of a Man and His World." We must begin with the world we live in . . . our own personal environment. We must realize its essence first, before entering God-consciousness. We have to arise from our individuality through a mediator, which is *Shakti* [Power], to our point, which is Shiva. We have to see each of these aspects residing in each and every particle of the universe. Everything is three-fold. Whatever we see is three-fold. The individual, the mediator (connecting link or medium Shakti), and the Shiva point.

Alice: Please expand your idea of the mediator power . . Shakti .

Laxmanjoo: Mediator means "that by which we pass," all avenue by which the individual gains entry into universal consciousness. It is a link between the individual and the universal.

Alice: According to Shivism, how exactly does the movement from the individual consciousness to the universal take place?

Laxmanjoo: Through awareness.

Alice: And Shakti then is the medium through which awareness travels?

Laxmanjoo: Yes, Shakti is the instrument through which awareness travels from individuality to universality.

Alice: Does Shaivism explain how awareness expands?

Laxmanjoo: Awareness expands only when one recognizes this medium or mediator state, Shakti. For instance, take the breath - we inhale, we exhale. The inhaling and exhaling are two distinct movements that take place in every being. But through awareness we must seek out the point, the junction, wherefrom these both arise. When this motion of inhaling

is completed and the movement of exhaling has not begun yet, at that very point we must maintain our awareness, between the two movements. The awareness must be . . maintained one-pointedly at the center without distracting ideas or thoughts interfering.

Alice: In this system, what is the first step what does one attempt first?

Laxmanjoo: In the Trika philosophy there are three methods: Anavopaya, Shaktopaya, Shambhavopaya. The first is the inferior (beginning) method. Second is the mediocre (intermediate) method, and the third is this superior (advanced) method. The inferior attempt is meant for those who are beginners who have yet to develop awareness. Anavopaya is connected with "anu" which means "limited being." This one deals with the objective fields of awareness. The second pertains to the cognitive field, and the third to the subjuctive fields. One begins with th objective field and progresses in subtlety to the second and third stages. For instance. in the objective field, the breath becomes the object. Incoming and outgoing breath is observed. One beginswith that. You have to take support of your breathing . . . when one succeeds in objectifying the incoming and outgoing breath, and the space or point between them, with awareness, this is called Anavopaya, the beginning method. It is connected with one's individuality. It has alos been taught to us by our masters to associate certain mantras with these phases of breath.

Alice: Do you mean the Soham brath mantram?

Laxmanjoo: Soham breath would be the same . . . yes. A time comes in practice when one's mind develops awareness and is able to maintain it. At such time one begins to feel no need for breathing in and out. The idea comes that one should not move the breath in or out, but maintain it in the center, between breaths. One-pointed. A desire to remain in that one-pointedness develops. But it is not recommended by our masters that the beginner stay in this point. The masters force their disciples out of this state. Even though the practicant thinks that they should not continue this in and out breathing. But they should continue. It is our master's firm advice that they should continue.

Alice: So one should not hold indefinitely at that point, but continue breathing with awareness?

Laxmanjoo: Yes . . . they should continue. The time will come when

awareness is fully developed, when this breathing in and out becomes so subtle that you can't observe it, in or out. It drops away from observation. One feels that there is no breathing at all. It's as though the breath has vanished. There is a big difference between stoppage of the breath and vanishing of the breath. When the breath vanishes, it goes to its subtle basis. This is what occurs naturally when one develops one-pointed awareness between the in and out breath. The breath stops or vanishes automatically, and the practicant feels as though the breath coils up tightly in a ball.

Alice: In this experience, does one feel increased body heat?

Laxmanjoo: No. Only that the breath has been balled up, or converged.

Alice: Does one feel movement in this breath as it is balled up?

Laxmanjoo: Yes. It's as though the breath were wound tightly into a ball. It then rushes downward as though the sensation were in the middle of the spinal cord. One hears an odd sound, like sssshhh. One feels and hears this sound internally.

Alice: Then it rushes down and strikes Kundalini?

Laxmanjoo: Yes . . . and Kundalini then rises in the formation of supreme joy. The joy is beyond imagination. The odd thing is that this joy is just like a sexual joy, but it is a million times more dense. This joy is felt as Kundalini moves upward in the sadhak. This is called the rise of Prana Kundalini. It can manifest in six different ways. They are called Bheda. The penetration through these wheels *[chakras]* may occur in six variations. One is Bindu Bheda. Bindu Bheda means the force of Kundalini takes the formation of semen.

Alice: You mean ojas?

Laxmanjoo: Yes, that is correct. *Ojas* in men and women. One feels that *ojas*, or semen as if it were flowing upward. This is Bindu Bheda. There is also Shakta bheda. In Shakta Bheda, the Kundalini takes the manifestation of intense energy *[Viga]*. The energy *[viga]* then flows upward.

Alice: This seems to be quite a common Kundalini manifestation.

Laxmanjoo: Yes . . . I also have experienced it this way, God wiling. There is also Brahmara Bheda. This is when Kundalini manifests as a large black bee. And one feels as though this black bee is moving through

the chakras. Yet another experience is that of Bujanga Bheda, wherein the Kundalini manifests as the movements of a serpent. How many is that?

Alice: That's four ways.

Laxmanjoo: Yes, and Para bheda is the supreme experience in the Prana Kundalini experiences. Para Bheda.

Alice: There is one more between Bhujanga Bheda and Para Bheda?

Laxmanjoo: Yes, but I cna't recall that.

Alice: Then go on to Para Bheda.

Laxmanjoo: Para Bheda is that spiritual . . . .

Alice: Complete knowledge?

Laxmanjoo: No. Complete spiritual, super-sexual joy. The flow of super-sexual joy.

Alice: This then must be the real meaning of Shivism. The Shakti force, joining with the Shiva point. That joy, from that union, is the real meaning of Shaivism.

Laxmanjoo: Yes, yes.

Alice: The real bindu, the real point of it then, is that love affair between Shiva and Shakti within our being.

Laxmanjoo: Yes, exactly. This experience is narrated in the *Vijnanabhairava Tantra.* It is a love story between Shiva and Shakti.

Alice: Yes.

Laxmanjoo: But this love we have to experience, this love is real love. This is a real love story. Shaivism is just a magnificent love story, explained in the language of love. It is experienced in the language of love. One must learn what that language of love is.

Alice: Because that symbolizes the process, it symbolizes the Shaivite realization. All love of any kind is then viewed as coming out of this supreme love.

Laxmanjoo: Yes, it has all come out of that. That is the teasure. The source of all love affairs.

Alice: Shivism stands on the basis between Shakti and Shiva, together in balance.

Laxmanjoo: Yes, and this rise of Kundalini takes place in three different ways according to Shaivism, though I have felt only the first two. In the first way (Pranā Kundalini), Kundalini rises in successive stages up the spine. In the second way (Chitt Kundalini), Kundalini rises in a spontaneous flash all the way, without stopping in various centers of the spine. In the Prana Kundalini, each chakra, or wheel, is pierced and activated one after the other. Many people speak of these as lotuses. My experience is that they are like wheels that spin.

Alice: Swamiji, are you familiar with the book by Arthur Avalon, *Shat Chakra Niroopana*?

Swamiji Shat Chakra Niroopana?

Alice: In that book there are descriptions of the different centers or lotuses, but the actual process of setting them in motion is lacking. Does your experience tally with that of the lotuses?

Laxmanjoo: No, not just like Shat Chakra Niroopana. I have experienced as I have told you.

Alice: What about when it talks of the yellow square and the lotus petals, for instance?

Laxmanjoo: That way I have not experienced. Although sometimes my master talked of such things. One must realize an important thing. There are various ways of experienceing these things. This field, or aspect of nature, is so grand, so universal, that one cannot with truth say, "My experience is the only way to experience such things."

Alice: It may be only one angle or viewpoint . . .

Laxmanjoo: It may be. There may easily be another way or many other ways. You cannot deny or overlook anything. There may yet be something more to experience. But Abhinava Gupta has explained these three ways of Kundalini in his book.

Alice: This is not an intellectual process, but rather an experiential series of methods?

Laxmanjoo: Yes, this has little to do with intellect. At first, as the concentrated breath moves down toward the bottom of the spine, a feeling of increasing velocity is experienced. The sadhak begins to experience great joy. The same joy that I have already explained, like a super-sexual joy.

And this joy remains and becomes permanent. It flows like a fountain through one's being. This intense joy, after a few seconds, flows upward *to another center, or wheel—Swadisthana. And there you find . . . . Oh, I* forgot to tell you, when it touches the bottom of the spine in the rectum one begins to feel a rapid spinning of that center. That wheel begins to gain velocity and one hears that sound, sssshhh, like a strong wind. A wind of joy.

Alice: After it moves higher?

Laxmanjoo: It reaches Swadisthana; and it also begins to spin and revolve so that now one feels two centers spinning simultaneously. From there it keeps moving up from here [stomach, heart], to here [top of skull], where it does not move. With me, it has not reached here [top of skull] fully yet.

Alice: What is your sensation here? [She points between her eyes (ajna) at forehead.]

Laxmanjoo: There also I feel it spin . . . but as though it only has two spokes in the wheel.

Alice: And in the center of that wheel?

Laxmanjoo: There is a point . . . it is from that point that this joy is radiating and throbbing. In Shaivism they also speak of a reverse experience of Kundalini. I also have experienced this by accident once. It was a very bad experience.

Alice: What exactly do you mean, Swamiji—can you explain?

Laxmanjoo: These first experiences of Kundalini that I have mentionhed are the real and correct movements. The reverse of Kundalini is spoken of at one point in the *Tantra Loka* of Shaivism. It is an incorrect movement that usually happens to people lacking the proper development of devotion for God.

Alice: Would you say then that in such cases the individual may not be established in the yamas and niyamas?

Laxmanjoo: Yes, yes.

Alice: So the correct movement of Kundalini is dependent upon the development of the yamas and niyamas?

Laxmanjoo: Yes, if not developed, this reversal of Kundalini may very

well develop.

Alice: What are the marks of this experience?

Laxmanjoo: At first it looks and feels as though it is the correct movement. The breath converges in a point.

Alice: You mean the breath stops as in the correct Kundalini experience and it rushes downwards?

Laxmanjoo: No, no. The breath becomes balled up, but it does not rush down to Muladhara. The breath converges, but it activates this chakra [eyebrow], then here [throat], then heart, and so on down to the bottom. You see the chakras revolving and feel them. It is called Pishacha Avesha. Pishacha Avesha means this trance in incorrect experience. It is not recognized as conducive by our masters. They say that it is better not to go through this kind of experience.

Alice: Better not to have it?

Laxmanjoo: Better not to have any Kundalini experience rather than this one.

Alice: But it does go down to Muladhara?

Laxmanjoo: Yes, it goes down to Muladhara, but it stops there and does not come upward.

Alice: What is the result of such an experience?

Laxmanjoo: One is lost to God Consciousness altogether and only a miraculous effort can save one in this state.

Alice: Then this process does not lead to Siddhi?

Laxmanjoo: No, it does not yield Siddhi. This Pishacha Avesha is the wrong movement of the pranas and Kundalini. These two ways . . . the right and the wrong way of Kundalini are only of the type of Kundalini experience called Prana Kundalini, the Kundalini of breath. The second classification of Kundalini is called Chitt Kundalini.

Alice: How does this Chitt Kundalini differ from the correct Prana Kundalini experience?

Laxmanjoo: The breath converges in a ball. It rushes downwards to Muladhara, but instead of passing through the succesive steps of the chakras gradually, it rushes in a flash like a burst up into the Sahasrara.

Alice: Without stopping at Swadisthana, Manipura, etc.?

Laxmanjoo: That's right. It goes directly to the top, like a fountain.

Alice: When did you first have this experience?

Laxmanjoo: I was runnings in my 22nd year and the experience of this Chitt Kundalini, this best Kundalini, took place at Sadhuganga, a dense forest region.

Alice: Were there many other sadhus there?

Laxmanjoo: No, it was dense forests with no one around.

Alice: How long did you live there?

Laxmanjoo: About four months.

Alice: And when this experience happened, it just came up and you fell to the ground?

Laxmanjoo: Yes,

Alice: How long were you like that?

Laxmanjoo: About one or two hours maybe.

Alice: Had you been sitting in your asan, or were you walking?

Laxmanjoo: No, I was sitting.

Alice: You were just sitting and it shot up. You fell over and two hours later you came out of his state?

Laxmanjoo: Yes.

Alice: Did it come on spontaneously?

Laxmanjoo: Yes.

Alice: Over and over again, many times?

Laxmanjoo: Yes. Not only while meditating, but six months late in the bus, also, while travelling in the bus.

Alice: And when it came over you, you fainted?

Laxmanjoo: At first, but after some time, I could maintain my body.

Alice: When this Chitt Kundalini came up, did it absorb the first, the Prana Kundalini?

Laxmanjoo: No, it was a completely different experience from Prana Kundalini.

Alice: And the third variety of Kundalini?

Laxmanjoo: It is Shambhavopaya, pure God Consciousness, from start to finish. This is the movement of the highest Yogi.

Alice: Did you see your master experience this?

Laxmanjoo: Yes, my master knew this one.

Alice: Did you see it happen?

Laxmanjoo: Yes.

Alice: Where did he touch you?

Laxmanjoo: He didn't actually touch me, I was just near him.

Alice: Was he in meditation?

Laxmanjoo: Yes.

Alice: Were you trying to meditate, too?

Laxmanjoo: No, I was just feeling his presence.

Alice: So you were just sitting with him and it happened?

Laxmanjoo: Yes, it hit me also.

Alice: What did you do? Did you fall over, did you just sit, or did you faint?

Laxmanjoo: Yes, I fainted.

Alice: You fainted.

Laxmanjoo: Yes, because I was six years old, and I had yet no capacity. This he told me afterward. I had no ability to hold and absorb the energy.

Alice: But Swamiji, what did you feel just prior to this experience when your master slipped into that state?

Laxmanjoo: I felt my master go into some state of mind, and the feeling was too much for me and I fainted with the experience.

Alice: How long were you out like that?

Laxmanjoo: I don't know: I fainted. Then after some time, I got up, and my master was smiling at me.

Alice: Were you practicing Yoga at that time, Swamiji, or was that your first experience?

Laxmanjoo: At this time, I had never practised. I was six years old. After that, he began to teach me. I used to watch him meditate. I was curious to know what he was doing, so he told me to do such-and-such

practice. I was just a little boy and every time I tried, I fainted away. It wasn't unitl after my ninth birthday that I didn't faint anymore.

Alice: When you came out of this experience what did you think? What did you remember?

Laxmanjoo: I was completely overjoyed. I was intoxicated with joy.

Alice: And how long did it last?

Laxmanjoo: Ha . . . I am still intoxicated [all laugh]. This is an interesting subject in Shaivism . . . it is the theory of reflection. It is found in this Shambhavopaya. You know there are three upayas, three means of attainment. One is beginning Anavopaya, one is intermediate - Shaktopaya, and the advanced Shambhavopaya. In Shambhavopaya one must feel this whole universe as a reflection in one's own consciousness.

Alice: Like a mirror.

Laxmanjoo: Yes . . . in the mirror of consciousness itself.

Alice: In one's own individual consciousness.

Laxmanjoo: Yes, but in shambhavopaya, individuality and universality are not recognized or viewed as separate or distinct from one another. In Anavopaya, they are separate experiences, but in Shambhavopaya, they are not separate. Universal consciousness and individual consciousness are not two, but one.

Alice: No distinction is perceived.

Laxmanjoo: No, because individuality is universality and vice versa. There is no difference in this experience between God and the individual. When one actually perceives God, then you perceive God everywhere and there is no place for the individual separate from God. Everywhere, inside and out, God is seen.

Alice: Is this similar to the *Advaita Vedanta* of Shankara?

Laxmanjoo: Yes, you might say . . . and there are 11 ways of centering in our Trika System, which are found in the *Vijnabhairava Tantra*. In Anavopaya, the centering has an object for support. In Shaktopaya, the centering is supportless. For instance, you have two consecutive experiences, and the awareness perceives objects in the two experiences. But what was between these two experiences? What was the sensation when one object ceases and the next has yet to appear? That is Shaktopaya, and

one must fix the awareness there without support of any object. If the mind leaps from the one object to the next, that is Anavopaya. When one moves awareness from the first object into the space between, and fixes there without going on to the next object, that is Shaktopaya. And in Shambhavopaya, one leaps spontaneously into the center without either object.

Alice: Then Shambhavopaya is also supportless.

Laxmanjoo: Yes, in Shaktopaya, one takes support only once, and then discards the object. In Anavopaya, one moves from object to object consecutively. In Anavopaya, there is continuous support, for instance, observing inhaling and exhaling with the mantra soham, soham repeatedly, in continuity, and observing the center. This is Anavopaya. But Shaktopaya, you have not to recite these mantras, just only once to begin. Then leave aside all objects and get centered between the objective experience. It is neither this nor that; it is something else. It is a sensation between objects. It is nothingness; it is wild, you have to catch hold of it. That is Shaktopaya. It is wildness with no structure, without taking support of any two consecutive experiences, objects, thoughts or movements. Two steps, one has come, it is over; the next has yet to arrive . . . hold there, and that is Shaktopaya. Shambhavopaya is even more of a spontaneous leap between objects of perception, into that objectlessness. Shambhavopaya is just to dive deep into that wild center of awareness.

Alice: Shambhavopaya would then come naturally from long repeated practice of Shaktopaya?

Laxmanjoo: Yes, naturally.

Alice: What about the breath in this experience?

Laxmanjoo: In this type, the breath does not become wound up in a ball. It does not rush down towards the rectum.

Alice: You mean you have no awareness of these grosser changes?

Laxmanjoo: That's correct. When you are practising breathing/meditation, and maintaining awareness in that junction between in and outgoing breath - with the mind withdrawn from worldly matters, then this best of rises sometimes occurs. Para Kundalini it is called.

Alice: Does the breath behave in the same way?

Laxmanjoo: Not quite. The breath does not stop, it vanishes completely, root and all. You can't find the breath. It absorbs in nothingness, and the rise of Kundalini in God Consciousness takes place not in the body, but in the cosmos itself. One gets direct entry into that cosmos. It is universal consciousness takes place not in the body, but in the cosmos itself. One gets direct entry into that cosmos. It is universal consciousness.

Alice: It is mental awareness expansion without the physical?

Laxmanjoo: Yes, that's right.

Alice: Does one's body become cold?

Laxmanjoo: People say that. My master told me that.

Alice: As though the body were dead?

Laxmanjoo: Yes. The heart does not pump, it throbs gently. It does not function in the same way. But the experience of the super-sexual joy is the same.

Alice: It's just a magnificent experience . . . when such a person comes out of such an experience, does your Shaivite system say that it lingers on?

Laxmanjoo: Yes, one comes back to body consciousness, but that body consciousness is not held easily.

Alice: It keeps going back up into that objectless state . . .

Laxmanjoo: Yes, one sinks easily back into that state again and again. After some time, one comes out of it, but then all is new. One's life becomes a new life.

Alice: Jivanmukta?

Laxmanjoo: Yes, Jivanmukta.

SWAMI LAXMANJOO MAHARAJ

Surging reminiscences

Capt. M. K. Ka
J-77, Kalkaji, New I

It gives me an immense pleasure to know that Ishwar Ashram has undertaken to bring out the devotee's experiences and bene grace showered by our great master Swami Laxmanjoo Maharaj, form of a book.

The first time I had the *darshan* of Swamiji, was in mid 19 Srinagar, Kashmir, on the marriage of Indira nee Zutshi to my yo brother, Bansi Lal. This contact, with our great *Guru,* an embodim God, grew in the course of time as we became regular visitors Ashram.

In one of our regular visits in connection with a *yagya,* we pick two boxes of fruits from the market on our way to the Ashram. landed on the gates of Gupt Ganga Ashram and offloaded the fruit b the fellow devotees scared us for having violated Swamiji's code of ing any thing on this occasion, of which we had no earlier know We pleaded with the devotees, who insisted that we take back the when we return. We kept these boxes on the side of the main kitche did not take them to Yagyashala.

During a short break, Swamiji came out from the Yagyashala little rest, sat on his easy chair facing the devotees sitting on th including myself. Swamiji was looking quite serene and tranquil. out asking who brought these fruit boxes against his directive, en what these boxes contain. My heart was pounding. I answered, shivering voice that one of the boxes contained pears (babugosh the other one contained apples. After a minute's silence, he direct to take one of the boxes to Yagyashala for devotees performing the I felt immediately at ease, and grateful for his Grace.

In another memorable incident, during his short visit to Del medical checkup, I guess less than a week's stay at Kalkaji, Sw directed us not to tell any one, about his presence in Delhi. We pl that if there is an enquiry from his devotees, we will be committi offence of lying. He directed us that it is your test. We pleaded we n your grace to go through this rigorous test.. With his grace, we sto

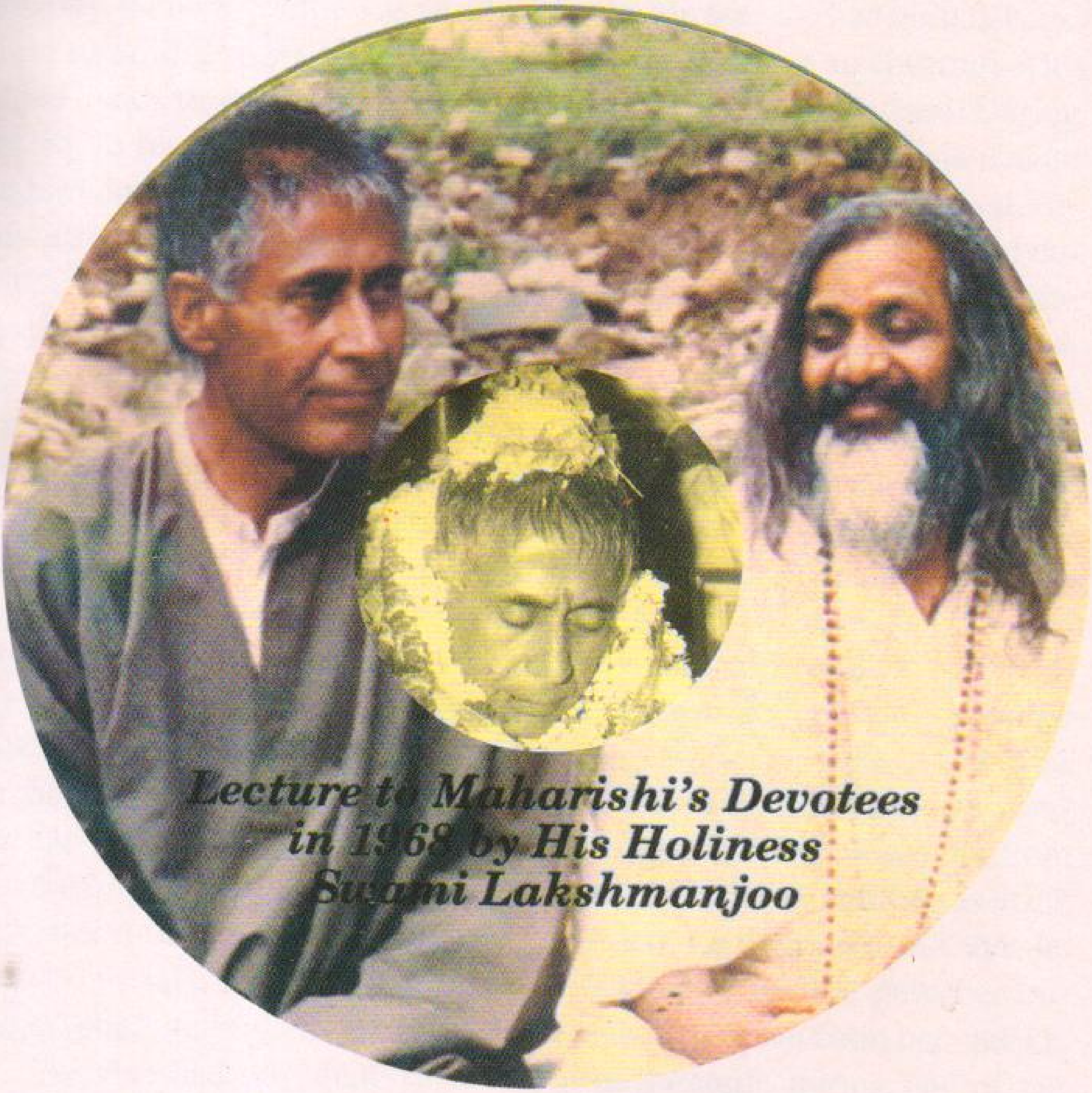

Photo Courtsey : Raja & Ranjana Wanchoo, U.S.A.

test and never opened our mouth to any one. Our daughters came and went away without knowing about his presence in the house. My daughter, who used to leave her chile with us before going to office, visualized from the kitchen setup and enquired if Swamiji was expected, but we remained stuck to our commitment not to divulge. I guess, on second or third day, while Swamiji was strolling on the terrace, she had his darshans, while returning from office. She offered her Pranams to Swamiji with folded hands from that distance, which he readily acknowledged. During our trip to hospital and back I was indeed hoping that some one should see him during this trip so that his presence would be known to his devotees without our violating his directive.Swamiji fulfilled our internal desire, and we met a devotee right at the gate of the hospital; however, she was also directed to keep quite. But all the same, his devotees were on the move to find about his whereabouts, I am sure Swamiji must have been in the knowledge of their efforts. They did, however, come to know about his visit to Delhi, but only after his departure to Srinagar.

Swamiji's kindness and benevolence to his devotees transcends time and space. Here I quote one example. In one of his kind visits to Kalkaji, my wife (Rani) asked, what he would like to eat. He gave his choice of vegetables to be prepared and told that he would take meals at 8.00 p.m. It so happened that one of the vegetables indavertently got burnt while cooking. Rani became tense and was almost in tears, more so because the mealtime was approaching fast. What, if he asked for the food now? She had already dispatched someone to bring afresh that vegetable from the market. She was in panic. Right then, Swamiji called her as if he understood the difficulty (which we are sure he did) and said that he would now take food later at 8.30 p.m. This kind gesture gave her immense relief, and felt so grateful, that tears rolled down from her cheeks.

We also had our share of firing from Swamiji, during one of our stays at the Ashram in 1990; this we considered more of a blessing from our great Master. In fact, we were summoned to be at the Ashram to attend a Yagya. From the very start, from Delhi, we were strongly advised not to go to Srinagar, on account of the prevailing militancy. Nevertheless, we did go to Srinagar. The officials at Delhi advised us not to undertake this journey, or else take security guards' police escort to the Ashram from tourist center. Finally, I told the gentleman, an official of

Kashmir Government, that we have been asked by Swamiji to rep the Ashram, and there is no way of not undertaking this journey. We obey his directive even if it is a risk ti our lives. Eventually, ignorin militant's threat, and with no physical security, we reached safely Ashram without any hassles. It all happened with the grace and sec of our Guru!.

At the Ashram, Swamiji was engaged in the construction Yagyashala, on top of an old cow shed. We were directed to clear the of loose earth behind the temple and also remove wooden planks job had to be done, both by my wife and me, and no one was allow give us any helping hand. With his grace we did not falter and comp the assigned job. At the end of the day, he advised one of his disc (Mr. John) to provide some kind of ointment to be applied on our br As the main job was getting over, we somehow got a feeling th project in hand would need more funds for its completion. So we c tively approached Swamiji of making our humble contribution t project; and my wife broached the subject with him. He got furious was in tears and we were all upset, wondering what did we do made him so furious. Rani felt that possibly Swamiji may not take But after a while, the usual bell rang summoning all the devotees f meals. Except Rani, all joined for the meal. Swamiji enquired about and directed one of the devotees to call her to join for the meals. H so kind and soft, by reminding us that we had earlier offered to co ute towards his medical expenses (for pacemaker) in Delhi. I denie subsequently Rani, sitting next to me, reminded that it is indeed tr

These blessings led me to undertake a trip to Telbal, a remot with militancy at its peak. Swamiji asked me to wear his '*phe* (kashmiri woollen cloak), and leave for Telbal in a truck, to get the t sawed for the ongoing construction. However, the sawmiji was c due to power cut. The truck driver dropped me halfway, as he d want to take me along. Wearing SWamiji's *pheeren,* with tilak c forehead, at no stage did I feel alone even though the place was unfa to me. I enquired from the shopkeeper, if any bus, scooter or three-w operates to Nishatbag. On his advice, I took the oncoming bus, tl the facial expressions of the conductor appeared to be hostile. Obvi Swamiji's *pheeren* became my identity as well as my security.

ॐ

अथ श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्य श्रीमदभिनवगुप्तपादविरचितं

देहस्थदेवताचक्रस्तोत्रम्

SHRI DEHASTHA DEVATA CHAKRA - HYMN TO THE GALAXY OF GODS

भाषानुवाद–ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

English Translation by : Sh. Samvit Prakash

असुरसुरवृन्दवन्दितमभिमतवरवितरणे निरतम्।
दर्शनशताग्र्यपूज्यं प्राणतनुं गणपतिं वन्दे ॥ १ ॥

मैं (पूज्य) प्राणरूपी गणपति को प्रणाम करता हूं जो सैंकडों अथवा सभी शास्त्रों में प्रथम-पूज्य है, जो अभीष्ट वरों के प्रदान करने में लगा हुआ है और जिस की वन्दना देवता तथा असुर-गण करते रहते हैं ॥

asura-sura-vrinda-vanditam
abhimata-vara-vitaraṇe niratam /
darśana-śatā-grya-pūjyam
prāṇa-tanum̐ **ganapatim̐** vande //1//

I adore Lord Ganapati whose body constitutes Prana Shakti, the vital energy, who is ever inclined to confer boons (on those who take refuge in him), who stands propitiated at the commencement of hundreds of philosophical expositions (*viz* Shastras) and who is worshiped by gods as well as by demons.

वरवीरयोगिनीगणसिद्धावलिपूजितांघ्रियुगलम्।
अपहृतविनयिजनार्तिं वटुकमपानाभिधं वन्दे ॥ २ ॥

मैं अपान नाम वाले वटुक-भैरव को प्रणाम करता हूं, जो शिष्य-जनों का दुःख दूर करता है और जिस के चरण-युगल की पूजाश्रेष्ठ वीरों, योगिनियों और सिद्ध-पुरुषों ने की है ॥

varavīra-yogini-gaṇa
siddhā-vali-pūjitām̐-ghri-yugalam /
apahṛita-vina-yijanār-tim̐
vaṭukam apānā-bhidham̐ vande // 2 //

I adore Lord Vatuka Bhairava, whose body constitutes Apana Sakti, the lower vital energy, who always dispels the sufferings of his devotees and whose pair of Lotus feet is always worshippd by great heroes, the

yoginis and the perfect accomplished beings.

आत्मीयविषयभोगैरिन्द्रियदेव्यः सदा हृदम्भोजे।
अभिपूजयन्ति यं तं चिन्मयमानन्दभैरवं वन्दे॥ ३ ॥

मैं उस चिद्रूप आनन्द-भैरव को प्रणाम करता हू जिस को इन्द्रियदेवियां अ अपने शब्द आदि विषय-भोगों से हृदयरूपी कमल में सदा पूजती हैं ॥3॥

ātmīya-viṣaya-bhogair
indriya-devyaḥ sadā hṛidam-bhoje /
abhi-pūjayanti yaṁ taṁ
cinmayaṁ **ānanda-bhairavaṁ** vande //3//

I bow to the Highest Reality, Parama Shiva also called An Bhairava, of the form of Chitta (absolute consciousness) whom the siding deities of various sensory and motor organs always worship w the lotus of heart through their respective sense perceptions (*viz.* s taste, sight, touch, and sound).

यद्धीबलेन विश्वं भक्तानां शिवपथं भाति।
तमहमवधानरूपं सद्गुरुममलं सदा वन्दे॥ ४ ॥

मैं निर्मल अवधान-स्वरूप उस गुरुदेव की वन्दना सदा करता हूं जिस अ को अपनी बुद्धि में ठहराने से भक्त-जनों को यह सारा संसार शिव मार्ग ही पड़ता हैं।

yad-dhībalena viśvaṁ
bhaktānāṁ śivapathaṁ bhati /
tam-aham-avadhāna-rūpaṁ
sadgurum-amalaṁ sadā vande //4//

I always worship my ever-pure-Guru, the Master, of the fo spiritual awareness, which when firmly established in one's intelle ascertaining intelligence enables the devotees to perceive this uni of objects as the very abode of Lord Shiva.

उदयावभासचर्वणलीलां विश्वस्य या करोत्यनिशम्।
आनन्दभैरवीं तां विमर्शरूपामहं वन्दे॥ ५ ॥

मैं उस पूर्ण-अहं-विमर्श-रूप आनन्दभैरवी को प्रणाम करता हूं ज सम्पूर्ण-विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूप लीला लगातार करती रहती

udayāva-bhāsa-carvaṇa-
līlāṁ visvaśya yā karotyanisam /
ānanda-bhairavīṁ tāṁ

vimarśa-rūpām ahaṁ vande //5//

I bow to goddess Ananda Bhairavi, the I-consciousness of the Supreme, who always remains engaged in the three fold world process consisting of creation, maintenance, and dissolution.

अर्चयति भैरवं या निश्चयकुसुमैः सुरेशपत्रस्था।
प्रणमामि बुद्धिरूपां ब्रह्माणीं तामहं सततम् ॥ ६ ॥

मैं उस बुद्धि-रूप ब्रह्माणी (ब्राह्मी भगवती) को सदा प्रणाम करता हूं जो 'सुरेश-पत्र' अर्थात् इन्द्र संबन्धी पूर्व-दिशा में ठहरी हुई निश्चयरूपी पुष्पों से भैरव-नाथ की पूजा करती है॥

arcayati bhairavaṁ yā
niścaya-kusumaih sureśapatrasthā /
praṇamāmi buddhi-rūpāṁ
brahmāṇim tām-aham satataṁ //6//

I always bow to goddess Brahmāṇi, the presiding deity ascertaining intelligence, who, situated in the eastward petal named after Indra, continues to worship Ananda Bhairava (hereafter called Bhairava).

कुरुते भैरवपूजामनलदलस्थाभिमानकुसुमैर्या।
नित्यमहंकृतिरूपां वन्दे तां शाम्भवीमम्बाम्॥ ७॥

मैं उस अहंकार-रूप शाम्भवी माता (माहेश्वरी) की वन्दना सदा करता हूं, जो अग्नि-दिशा (दक्षिण-पूर्व-दिशा) में ठहरी हुई अभिमानरूपी फूलों से भैरवनाथ को पूजती है ॥

kurute bhairava-pūjām-
analadalasthā-bhimāna-kusumairyā /
nityam-ahaṁ-kriti-rūpāṁ
vande tāṁ **śāmbhavīm**-ambām //7//

I always bow to mother Shambhavi, (also known as Maheshwari), the presiding deity, who, situated in the southeastern petal named after Agni, the God of Fire, worships the Bhairava with flowers consisting of feeling of the limited I-ness (limited ego).

विदधाति भैरवार्चां दक्षिणदलगा विकल्पकुसुमैर्या।
नित्यं मनःस्वरूपां कौमारीं तामहं वन्दे ॥ ८॥

मैं उस मन ही स्वरूप वाली कौमारी नामक शाक्ति की वन्दना नित्य करता हूं, जो दक्षिण दिशा में ठहरी हुई विकल्परूपी पुष्पों से चिन्नाथ की पूजा करती रहती है ॥

vidadhāti bhairavārcāṁ

dakṣiṇa-dalagā vikalpa-kusumairyā /
nityaṁ manah svarūpāṁ
kaumārīm tām-ahaṁ vande //8//

I always bow to goddess Kaumāri, the presiding deity of mind, who, situated in the southward petal constantly worships the Bhairava with flowers consisting of vikalpas, the thought-constructs.

नैर्ऋतदलगा भैरवमर्चयते शब्दकुसुमैर्या।
प्रणमामि श्रुतिरूपां नित्यं तां वैष्णवीं शक्तिम्॥ ९ ॥

मैं उस श्रवणेन्द्रियरूपी वैष्णवी नाम वाली देवी को नित्य नमस्कार करता हूं, जो नैर्ऋत-दल अर्थात् दक्षिण-पश्चिम कोण में ठहरी हुई शब्दरूपी पुष्पों से भैरव-नाथ की पूजा करती रहती है॥

naiṛita-dalagā bhairavaṁ
arcayate-śabda-kūsūmairyā/
praṇamāmī śruti-rūpāṁ
nityam tām **vaisṇavim** śaktiṁ //9//

I always bow to goddess Vaishnavi, the presiding deity of auditory sense-faculty, who, situated in the south-western petal, named after Nairita, continuously worships the Bhairava with flowers consisting of actual perception of various sounds.

पश्चिमदिग्दलसंस्था हृदयहरैः स्पर्शकुसुमैर्या।
तोषयति भैरवं तां त्वग्रूपधरां नमामि वाराहीम्॥ १० ॥

मैं उस त्वचा रूप वाली वाराही भगवती को प्रणाम करता हूं, जो पश्चिम (वरुण-दिशा) में ठहरी हुई हृदय-हारी स्पर्श रूपी पुष्पों से भैरव-देव को सन्तुष्ट करती है ॥

paścima-digdala-samsthā
hridaya-haraih sparśa-kusumairyā/
toṣayati bhairavaṁ tāṁ
tvagrupā-dharāṁ namāmi **vārāhīm** //10//

I bow to goddess Vārāhi, the presiding deity of tactile sense-faculty, who, situated in the westward petal named after Varuna (the god of water characterizing) cohesiveness), continuously worships the Bhairava with the heart-enticing pleasures of touch.

वरतररूपविशेषैर्मारुतदिग्दलनिषण्णदेहा या।
पूजयति भैरवं तामिन्द्राणीं दृक्तनुं वन्दे॥ ११ ॥

मैं उस नयन-स्वरूप इन्द्राणी भगवती की वन्दना करता हूं, जो वायुदिशा (पश्चिम-उत्तर-कोण) में ठहराये हुए देह वाली उत्तम-उत्तम सुन्दर रूपों से भैरवनाथ की पूजा करती रहती है।

varatararūpaviśeṣair
māruta-digdala-nisaṇṇadehā yā/
pūjayati bhairavaṁ tam
indrāṇīṁ dṛktanuṁ vande //11//

I bow to goddess Indrani, the presiding deity of optic sense-faculty, who, situated in the north-eastern petal, named after Vayu (the subtle air characterizing perpetual motion), constantly worships the Bhairava through perception of specially beautiful forms.

धनपतिकिसलयनिलया या नित्यं विविधषड्रसाहारैः।
पूजयति भैरवं तां जिह्वाभिख्यां नमामि चामुण्डाम् ॥ १२ ॥

मैं उस जिह्वा नाम वाली चामुण्डा भगवती को प्रणाम करता हूं, जो कुबेर-दिशा अर्थात् उत्तर दिशा में ठहरी हुई सदैव नाना प्रकार वाले छः रसों (मीठा, तीखा, कसैला, खट्टा और कड़वा) से भैरवनाथ को पूजती है ॥

dhanapatikisalayanilayā
yā nityaṁ vividha-sad-rasāhāraiḥ/
pujayati bhairavam tāṁ
jihvā-bhikhyāṁ namāmi **cāmuṇḍām**//12//

I bow to goddess Chamunda, the presiding deity of gustatory sense-faculty, who, situated in the northward petal named after Kuber, (the god of wealth), is ever engaged in worshipping the Bhairava through experiencing the six kinds of tastes (*viz.* sweet, salty, hot, tart, sour, and bitter).

ईशदलस्था भैरवमर्चयते परिमलैर्विचित्रैर्या।
प्रणमामि सर्वदा तां घ्राणाभिख्यां महालक्ष्मीम् ॥ १३ ॥

मैं उस घ्राणेन्द्रिय रूप महालक्ष्मी अर्थात् योगीश्वरी देवी को सदा प्रणाम करता हूं, जो ईशान-कोण अर्थात् उत्तर-पूर्व-कोण में ठहरी हुई नाना प्रकार के केसर-चन्दन आदि परिमलों (सुगंधित-पदार्थों) से भैरव की पूजा करती है ॥

īśa-dalasthā bhairavam-
arcayate parimalair-vicitrair-yā/
praṇamāmi sarvadā tāṁ
ghrāṇā-bhikhyāṁ **mahā-lakṣmīṁ//13//**

I always bow to goddess Mahalaxmi (also known as Yogishwari),

the presiding deity of olefactory sensefaculty, who, situated in the north-eastern petal named after Isāna, worships the Bhairava with perception of smelling.

षड्दर्शनेषु पूज्यं षट्त्रिंशत्तत्त्वसंवलितम्।
आत्माभिख्यं सततं क्षेत्रपतिं सिद्धिदं वन्दे॥ १४ ॥

मैं उस जीवात्मा रूपी सिद्धि-प्रद क्षेत्रपाल को सदा प्रणाम करता हूं जो सभी षट्शास्त्रों में पूज्य माना गया है और जो छत्तीस तत्त्वों से संवलित अर्थात् घेरा हुआ रहता है ॥

ṣaḍ-darśaneṣu pūjyaṁ
ṣaḍ-triṁśat-tattva-saṁvalitaṁ
ātmā-bhikhyaṁ satataṁ
kṣetrapatiṁ siddhidaṁ vande//14//

I always bow to Jivatma, the principal Experiencing Being, who bestows ultimate success (of self-realization), who is worshippd in the six schools of thought and who remains enveloped by the thirty-six eternal varieties (tattvas).

संस्फुरदनुभवसारं सर्वान्तः सततसन्निहितम्।
नौमि सदोदितमित्थं निजदेहगदेवताचक्रम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार मैं अपने ही शरीर में ठहरे हुए सदा उदित समस्त-देवता चक्र की स्तुति करता हूं, जो स्वानुभव-गम्य और सभी जड़ चेतन आदि वस्तुओं के भीतर ठहरा हुआ है॥

saṁsphurat-anubhava-sāraṁ
sarvāntaḥ satatasan-nihitam/
naumi sadodita-mittham
nija-dehaga-devatā-cakram//15//

In this way I worship the entire assembly of ever wakefull deities, which remain enshrined in my own body as well as in the whole universe of sentient and non-sentient objects and which, therefore, deserve to be experienced directly by each one of us.

MOTHERHOOD OF GOD & KASHMIR SHAVISTIC THOUGHT

R. K. Sapru.

Historically, the practice of worship of the divine Mother is as old as the civilisation. Not only Vedas but Agama Shastras particularly Tantras deal with specialised system of Divine Mother's worship. In this world there is no more selfless and gracious relation than the relation between mother and the child. A mother gives birth to a child out of her own womb after nourishment of him inside her womb for nine months. In the prenatal stage she shares all life functions with her inborn child. After giving birth to the child, the physical mother nourishes the child by her own blood in the form of milk. The mother brings up the child and the child never becomes bad or sinful in her eyes even if the child goes the wrong way. The child thinks that even after commiting grave mistakes or even sins, the mother can be persuaded to pardon him inspite of all his misdoings. The mother of the physical body is the physical mother but the mother of the soul consisting of mind, intellect and ego is the Divine Mother. The devotee, who is ever conscious of his imperfections and weaknesses, naturally approaches the divine Mother for forgiveness, strength and guidance. Just like the physical mother, the divine mother is responsible for the training of the soul on this physical plane towards perfection. Just like the occasional slapping of the naughty child by the physical mother, the divine Mother is at times rude to us. She imposes unpleasant sufferings on the soul in the hope of educating the soul. When the divine corrective and promotings of the divine overself from within is ignored by erring man, she resorts to harsher methods of punishment. The divine Mother has infinite patience to wait for the estranged lad to return back and retrace his steps towards the spiritual source.

The most concrete form of the divine Mother is the Earth. Just imagine with what attraction the Mother earth is clasping us to her breasts. She nourishes and feeds us with all types of fruits and vegetables together with all types of clothings to cover the naked body of her children. Her patience and egolessness is commendable, for does not she accept our dirt and refuse. Not only that our ever accumulating filth and dirt is

washed by her perennial waters but she sustains us by ever freshening atmosphere. Let us first unravel the metaphysical and philosophical truth about the Motherhood concept of God. Then sequentially we shall come down to her more tangible and concrete aspect.

The first from the top i.e. from the unmanifest aspect of God, is Param Shiva state of Nature. This state can be equated with the Para Brahman state of Vedantists.

In the Param Shiva state i.e. the Extracosmic nature of God, the Transcedental Truth with its self luminous and self-conscious nature is quite evident. It is the supreme self surveying its down self in all apparent aloofness. Self luminous nature of Param Shiva is Prakash in Kashmir Shaivistic terminology and Surveying its self luminous nature by itself is its Vimarsh aspect. Thus Param Shiva or the Absolute is "Prakash-Vimarshmaya".

It is the great luminous Sun of pure consciousness with self-reflection as its intimate character. Thus in Param Shiva state, the 'I' (i.e. its Prakash aspect) and the 'This' its consciousness of it as itself (its Vimarsh aspect) are in undivided unity. This Vimarsh is the independent Sovereign will of the Supreme. Thus Vimarsh, the Absolute will is variously called as Parashakti, Spanda, Para Prakriti etc. In its intentness to manifest the world, Param Shiva's Prakash aspect becomes the Shiva Aspect characterised by self-revelation or shining forth of its luminous nature.

Secondly the Vimarsh aspect becomes the absolute bliss or Ananda aspect. This Ananda aspect or absolute bliss is the absolute will to do anything without any external aid and the virtual Mother of the world to be. The manifestation of this world to be is carried out by the blissful Mother owing to her three Shaktis:

(i) *The Iccha Shakti*-The will to create or to do anything.

(ii) *The Jnana Shakti*- The power of knowing what to create or what to do.

(iii) *The Kriya Shakti*- The power of assuming any and every form.

These universal powers of Will, Knowledge and Action of Para Shakti or Para Prakriti become respectively the Rajasic (activity). Sattvic (illumination and knowledge) and Tamasic (rest and inertia) principles of lower Prakriti confronting each embodied soul.

The personified forms of divine Shakti are :-

1. *Maha Saraswati* - The spiritual consort Brahma - the creator. She

is the personification of knowledge aspect of the Parashakti i.e. Jnana Aspect representing the embodiment of predominance of Sattva Guna of lower Prakriti also.

As the embodiment of Sattva Guna, Saraswati is worshipped as the personification of qualities of truth. Knowledge, peace and illumination. Though above gunas (i.e. mental moulds and moods), she is the concrete personification of purity, knowledge, peace and light the abundance of all Sattvic qualities. The Sattvic mood of the mind has equilibrium and equipoise as its essential characteristics.

2.*Maha Lakshmi* - She is the spiritual consort of Vishnu the preserver of the world. She is the personification of Iccha aspect i.e. the universal volition aspect of Shakti or Para Prakriti. She represents Rajasic Guna the activity aspect of the lower Prakriti. By Her all above Gunas (i.e. mental moods) she is the embodiment of the qualities of power, wealth, luxury and prosperity. The Rajasic mood of mind has restlesseness as essential character.

3. *Maha Kali.* Maha Kali is the spiritual consort of Mahesh the destroyer of the world.Mahakali is the personification of Kriya Shakti i. e. an executive power of the Divine Reality. She represents the power of assuming any or every form. She is the embodiment of Tamasic principles in the lower Prakriti. Though Her above Gunas i. e. all mental attributes, represent the principles of inertia, dullness, darkness and pain in the world of manifestation.

The Tamasic mood of the mind has ignorance, lassitude and inertia as its essential characteristics.

It is because of Maya tattva i.e. the principle of limitation, the universal will—knowledge—Action aspect of Shiva become the limited will—knowledge—action nature of the individual embodied being.

The products of Maya are the five coverings or Kanchuk. They engulf the soul as veil, making him forget his universal nature.

The coverings are:—

(i) *Kala :* It reduces the universal authorship of Shiva to the limited authorship of the individual soul.

(ii) *Vidya :* This reduces the omniscience of the universal consciousness and brings about limitation in respect of knowledge.

(iii) *Rag:* This reduces the all satisfaction or wantlessness of the universal consciousness to the limited desire for this or that

of the individual soul.

(iv) *Kāl :* This limitation of Maya reduces the eternity of the universal consciousness to limited time division i.e. the past, present, future of the embodied soul.

(v) *Niyati :* This reduces the omnipresence of the universal consciousness to the limited presence in space and cause of the individual soul.

The divine Mother is aptly named as Maha Maya because by her power of limitation, she conceals the universal nature of the soul reducing him to a limited individual with limited will, knowledge and action.

For release from the imprisonment of Maya in the form of limited authorship, limited knowledge, limited interest, limited cause, time and space, the individual soul has to take refuge in the divine Mother. Without the grace of the divine Mother, the impronment in the three Gunas (three mental moods) is hard to surmount. The key to rising above Maya is to shun the illusion of duality and multiplicity by feeling oneness in all in and all by oneself. Only very few sages like Abhinava gupta, Shankaraharya, Sai Baba of Shirdi Swami Lakshman Joo Maharaj and, Bhagwan Gopi Nath of Kashmir and others could succeed in rising above the myopic effect of Maya. It is so because even the spiritually wise people are practically slaves of three Guna nature which is really very hard to surmount without perfect surrender and divine mother's grace.

All through we are stressing feminine Motherhood aspect of all, because it is she who gives birth to the universe from her womb just as human mother gives birth to the child through her womb. Not only that, the Divine Mother sustains this universe for specific period only to withdraw it at the time of great Doomsday the day of 'Mahapralaya.' With the power of her consciousness (as Chitrupini Shakti), the Divine Mother appears as Maya a (i. e. all limiting principle) to give birth to the limited individual called Purusha and his nature called Prakriti. This she achieves with the help of Five Kanchukas as described above. In her drive to manifest the embodied being and his surrounding object the Divine Mother next gives birth to mind, intellect, ego along with five sense powers of seeing, hearing, touching, tasting and smelling. Symbolising the same truth, we some times portray divine Mother with her eight arms, thereby signifiying the truth that divine Mother is that power which rules or moves the mind, intellect, ego and five sense powers. The divine Mother has

been depicted to be seated on the lion's back. Lion being the king of jungles and the symbol of power and terror, there could be no better symbol to signify her sovereignity and ruleship. The other truth about this symbol is the fact known to a few practitioners of Yogic Sadhana (spiritual discipline). When the mother's power as super-energy works in the body, it activates the hitherto closed channels (Nadids) in the subtle and hence the gross body by the Pranic movement. The body particularly the neck portion under-goes some peculiar spontaneous movements in the process of opening of hitherto inactive channels leading to the brain. The activity of the divine, super-energy in the body results in the appearance of big luminous halo around the head of the practitioner. In the process of activisation of all the 72000 channels (Nadis) supposed to be in body, the roaring sound of a lion automatically comes out of the throat of the devotee. In this way the practitioner of yogic processes, owing to the divine grace of the mother, realises the Maha-Jyoti svaroop (Radiance of divine light) nature of the divine Mother and the truth about the lion as the vehicle of the Mother. The reader may refer Shri Muktananda's Chit Shakti Vilasa in this connection. There is an instance in the life of Bhagwan Gopi Nath Ji of Kashmir. The incident runs thus — "At the Jyeshthaa-Bhagwan Shrine, a devotee implored Bhagwan Ji to grace him with a vision of Jyeshthaa Bhagwati. At about 4 a.m. while they were reciting Chapter IV of the Panchastavi, Bhagwan Ji asked the devotee too stand up and look towards the Bhagwati's holy spring. The devotee found an excessively bright light, as though of many Suns, coming from the spring. Bhagwan Ji immediately asked devotee to sit down or he could become blind."

There is a story in the Durga Saptashati where it is mentioned that Brahma, Vishnu, Mahesh and other Gods each contributed their divine power in order to give birth to a divine entity with colossal powers thereby exceeding the individual might of each of them. This was done to meet the challenge of unrighteous and demonic forces which posed a threat to the universal law and order and its whole set up. This resulted in the birth of a unique powerful divine Mother called Durga who later on killed the demons in the ensuing battles. Where the weapons in the hands of the divine Mother signify her intentness to kill all demonic and wicked forces, the conch in her hand symbolises her sound nature. She is termed as 'Om

Shabd Brahmini'. The sound nature of the Mother is stressed because it is said just before the creation only 'Om' sound apppeared together with the metaphysical point of stress called Bindu, which contained the whole universe to be. The divine Mother is the source of all unstruck sound (i. e. Anahad Shabds) like the Om sound, the conch sound, the flute sound, the drum sound, the bell sound, etc. She is also 'vaikhari', the pronounced articulate speech which carries out the activities of this world. Now the question is : Does God with form exist, can he be communed with? How the same is philosophically true and logically correct? The answer is yes. Philosophically is it advisable to approach God with form? Gita provides the answer for this. The Lord says, "the understanding and realisation of God without form is difficult of attainment by the embodied soul caught in name and form." The God with form can be easily approached. The realization of God with form shall in turn lead to the realisation of that unthinkable formless God.

The formless aspect of God pervades every speck of this manifest world of matter.

The wearing of this world of name and form by that formless Reality as the outer-most garment is in reality the formful universal nature of the formless Reality. So realising God in his formless aspect is to feel intimate unity with the surrounding beings and objects. The achievement of this stage in the spiritual evolution is possible only when you erradicate your ego and your individuality. But so long as you don't surmount your ego, you have naturally to look at God as individual and take him as your father or mother. Thus Adi Shankaracharya admits "Lord so long as I am conscious of my ego, thou art my father and I thy son but as soon as I transcend my ego thou and I become one." We have seen thousand instances when God gets down to individual level and appears with appropriate form to command, guide and even to perform the duties of the devotees whose surrender to Him is complete and unconditional. The reason is that the Lord who created all beings and all forms is powerful enough to take any or every form to satisfy his devotee. The Lord appears only in that very form that the devotee selected for his worship. The essence of the manifested form in which the Lord appears to the devotee has divine origin but the outer details of manifested form are taken from the contents of the individual mind of the devotee. The same

truth can be applied to the appearance of Mother Kali to Shri Rama Krishna Parmahamsa, appearance of Shri Krishna to Swami Ram Tirth and Shri Aurobindo Ghose and other such devotees.

The special feature about Mother's attributes is her nature of light, truth, power and beatuitude. Becuase of her all blissful nature, the divine Mother feeds and sustains the devotee by seven types of Ananda, each corresponding to certain definite step in the spiritual evolution of the embodied soul. To specify and extol the various attributes of the Divine Mother below mentioned poem has been composed.

The poem depicts the steps in the manifestation of this universe sequentially as revealed by Kashmir Shaivism. The cosmology of Kashmir Shaivism with its 36 Tattvas, stages or elements has been graphically represented in this poem. It starts with the three immortal, stages or aspects of the Reality namely Param Shiva (the transcendental Reality of pure consciousness), Shiva the immanent aspects of the reality and Para-Shakti—the dynamic energy aspect of that Reality. In other words Param Shiva without undergoing any change in itself appears as Shiva and Para Shakti. Para Shakti in her intentness to create appears as Iccha Shakti, Jnana Shakti and Kriya Shakti representing the three basic powers of volition, knowledge and Action of Shiva respectively. These three powers respectively represent what we technically call Sada Shiva, Ishwar and Shuddha vidya stages in Shaivistic cosmological system.

(HYMN TO SHIVA SHAKTI)

परम शिव, शिव

परम शिव शिव-शक्ति मज्य भगवती
दिम पन्न'न भक्ति कासुम सखती, । 2।
हाव पन्नअन युक्ती मज्य भगवती।।

Param Shiva, Shiva Shakti, thou art the Mother divine. Grant me thy devotion, remove all obstacles and show thy might,

परा शक्ति

चि़य पर शक्ति आनदं रुपनी।
चि़य मूल प्रकृति म'ज्य भगवती
छक जीव प्रकृती म'ज्य भगवती।। दिम पन्नअ।।

Thou art the transcendental super energy of the nature of absolute bliss. Thou art the root energy of the universe and the ordinary nature of the embodied.

इछा, ज्ञान, क्रिया शक्ति

चि़य इछा शक्ति चि़य ज्ञान शक्ति,
छक क्रिया शक्ति म'ज्य भगवती॥
दिम पन्न'न भक्ति कासुम सखती॰ ......

Thou art the power of universal volition,an encompassing
Knowledge again thou art the universal power of execution.

सृष्टि, स्थिति, संहार

ब्रहमारूपी शक्ति, छख करान सृष्टी।
विष्णु रुप शक्ति, छख करान स्थिति।
संहार शक्ति म'ज्य भगवती॥ परमशिव॥

In the form of Brahma, thouh art responsible for world-creation, in the form of Vishnu, the world is sustained by thee and again thou take the form of world-destroying Power.

निग्रह, अनुग्रह

माया रुपी शक्ति छक शिवस खटान
अनुग्रह रुपी छखनअनरावान॥
छखस्वतंत्र शक्ति म'ज्य भगवती॥
दिम पन्न'न भक्ति कासुम सखती॥
हाव पन्नअन युक्ती म'ज्य भगवती॥ परमशिव॥

In the garb of Maya, Shiva, the Ultimate Truth is by thee but in the form of Divine grace thou revealeth the truth Shiva. Again thou art the independent sovereign power.

तीन गऩ

गुनमय गुनातीत छक चि़य शक्ति पीठ,
शिव संज्य शक्ति मज्य भगवती॥ परमशिव॥

Thou art the Energy in the form of three Gunas men tal moulds and moods and thou the ruling power above these Gunas, art the conscious power of Shiva.

मन, बुद्धि, अहंकार

मन, बुद्धि, अहंकार छुय चोन चमत्कार

संकोच शकित मज्य भगवती।। परमशिव।।

Manifestation of the mind, intellect and ego are the weapons of your power. Thou art the all limiting power.

पंचज्ञान, पंच कर्म इन्द्रेय

प्यय पंचज्ञान पंच कर्म इन्द्रिय

पंच प्राण शक्ति म'ज्य भगवती।। दिम- - - -।।

Thou art the five subtle and the five gross elements and thou the power in a mystic sound formula.

वैयखुरी

चि़य परा पशनती मध्यमा वैयखुरी

ॐ शब्द ब्रहामणी म'ज्य भगवती।। दिम ।।

Thou art the four stages of manifestation of articulate speech. Again thou art the source of primal sound 'OM'

'कुंडीलनी'

च्यय मूलाधारची कुंडलनी शक्ति

चि़य सुशिमनायी मंज़ क्रीडावती

सहसरारस मंज़ अमृत सुरपनी

महा ज्योत स्वरूपनी म'ज्य भगवती।। परमशिव शक्ति।।

Thou art the concealed serpent power at the base of the spine. Thou art responsible for her play in the middle Sushumna channel.

Thou art the very form of nectar in the spiritual centre at the crown of the head. Again thou art all effulgence.

महा माया

निराकारस आकार छुय चोन विलास

महामाया शक्ति म'ज्य भगवती।। दिम।।

Manifestation of form out of formless is thy miraculous power. Thou art unknowable power...My adoration to thee.

"प्रथवी"

प्रथवी रूप हध'अरित छख प्रत्येक्ष माता

सीनस प्यठ जीवन छख ललनावान

अन तय फल दिथ छख अनपूरना

गंगा स्वरूपनी मअज्य भगवती

Assuming the form of the Earth, thou art the evident form of the Divine Mother. Embracing and caressing the living beings and holding them to your breast, the Divine Mother feeds them with grains and, fruits in the role of "Anna Purna."

Providing perennial waters, thou art the sacred Ganges.

"गुरु"

च्यय अन्निस भक्तिस गुरू श्रेष्ट-दिवान
च्यय छख गुरू सीवाय, तस लागान
शक्ति पातस गुरस प्रेरित क'रान
गुरू मूरती रूपी म'ज्य भगवती॥

'O' Mother, it is you, who chooses and bestows Competent Guru to the blind and serching devotee. It is by thy grace alone, the devotee gets the chance to serve the Guru. Again you assume the role of guru-morti for the devotee and inspire the Guru to exert and exercise Divine power on the devotee.

"चक्रेश्वरी"

च्यय हारी पर्वतयच चक्रेश्वरी
च्यय त्रिकूटी पर्वतच वैशवी
जुवाला देवी, नयना देवी,
शाकम्बरी, मअज्य भगवती॥
दिम पन्न'न भक्ति कासुम सखती

"O" Mother you revealed yourself in the form of "Chakreshwari" (the Mystic Symbol of Creation) on the Hariparbhat hill of Kashmir.

You revealed yourself on Trikuta hills as "Vaishnavi" at Jammu and in Jwala Devi, Naina Devi, Shekambari shrines. Bestw thy uninterrupted devotion to me.

OBEISANCE

To
The Glorious Preceptor

—Pandit Jankinath Kaul "Kamal"

जय गुरुदेव

अद्वैते प्रथितं समीक्ष्य रुचिरे वैज्ञानिकैरर्चितं
शिष्यैः साधुभिराश्रितं प्रणमितं सुज्ञैर्मुनीन्द्रैरपि।
केसर-कुंकुम-भूषितं गुणनिधिं संख्यावतां सद्गुरुं
तं वन्दे श्रीलक्ष्मणं नरहरिं सच्चित्सुखं देशिकम्॥१॥

To the lustrous Laksmana—
Annointed with Kashmir - saffron-paste;
The treasure of virtues,
Resorted to by virtuous disciples;
The propitious preceptor of the learned,
Adored by the proficient men of thought;
The bestower of Supreme Joy,
Revered by the wise, ascetics great;
To the lion-among-men,
Who evinced identity of Siva with universe,
We make obeisance.

स्वच्छान्तः करणं कृपात्तवपुषं विज्ञानमूर्ति कथं
प्रस्तोतुं प्रभवामि तस्य गुरुता निस्सीमभूता यतः
आनन्दादि सुलक्षणं यतिवरञ्चानन्दकल्पद्रुमं
तं वन्दे श्री लक्ष्मणं गुरुवरं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्॥२॥

How can I eulogise Him
Whose greatness has no bounds!
The embodiment of knowledge,
The deity of assumed compassion,
The pure conscience of no taint,
The ascetic of high order;
That excellent joy of perfection,
The divine fulfiller of desires,
The delightful wish-yielding tree;
To that glorious Guru Laksmana

We offer Salutation.

पीत्वा यद्वचनामृतं सुफलदं पूतो जनो मोदते
यस्यानुग्रहतो विवेकजनितं प्राप्नोति शान्तं पदम्।
पूर्णेनन्दनिधिः सुबोधरुचिरः पूज्यः परः पावनः
तस्मै श्रीगुरुलक्ष्मणाय भवते भत्तया नमस्कुर्महे॥३॥

Drinking deep
The nectar-juice of whose utterances
A purified soul is filled with delight;
Receiving whose grace,
Revealed through His Sovereign will,
One attains the abode of peace;
Apprehending whose brilliance
Of highly purifactory nature,
A seeker easily finds the treasure of bliss;
O venerable preceptor of auspicious marks!
We pay our homage to thee.
Jai Gurudeva

(Courtesy : Sant Samagam Research Institute, Jammu)

श्रीमदाचार्य अमिनवगुप्तपादरचित

शिवचामरस्तोत्रम्

Kashmiri rendering by
Shri Damodhar Nehru
English rendering by
Shri S.P. Dhar

व्याप्तचराचरभावविशेषं चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्।
भैरवनाथमनाथशरण्यं त्वन्मयचित्ततया हृदिवन्दे॥ १॥

(पदार्थ)

चराचर—थावर-जंगम **व्याप्त**—वातिथ **भावविशेषं**—रन्ग रन्ग रूप (पदार्थ) जगत **चिन्मय**—चैतन्यरूप (ईश्वर) **एक**—कुनुय **अनन्तं**-अन्तरुछ **अनादिम्**—आदिरुस्त। **भैरवनाथं**—रछवुन प्रभु **त्वन्मयचित्त**—तस कुन मन दिनकिन्य या तसुन्द मनस मन्ज ध्यान किन्य **हृदि**—हृदयसमंज **वन्दे**—प्रणाम छुस करान

(भावार्थ)

[illegible] थावर जंगम सअरिसय मन्ज रचि़ रचि़ वातिथ। रन्ग रन्ग पदार्थन मन्ज छु [illegible] चिन्मय-स्वरूप (ईश्वर) कुन। न छुस अन्त न आद्य। सुय छु रछवुन। तस [illegible] छुस हृदयस मन्ज तस प्रणाम करान।

(पद्यार्थ)

[illegible] रचि रचि थावर जंगममसूय। आदि अन्त रूस्तुय चैतन्य स्वरूप सुय॥
[illegible] अनाथन छुय। तन मन पूजन हृदयस मन्ज बुय॥ 1॥

1. I worship Lord Bhairava, i.e. Lord Shiva within my heart in perfect oneness with Him in consciousness; Lord Shiva, who is peerless and who pervades this phenomenal world of animate and inanimate objects, who is unique without end or beginning, i.e. infinite and who provides
refuge to those who surrender unconditionally with their heart flung open to Him.

[illegible]मिदानीं भातिममत्वदनुग्रहशक्त्या।
[illegible] सदैव ममात्मा स्वात्ममयं ममतेन समस्तम् ॥ २॥

(पदार्थ)

[illegible]—[illegible] स्वरूप वोल **एतत् अशेषं**—इ सारि सोरुय **इदानीं**—वुन्य **भाति**—भास छु [illegible]—च्यानि **अनुग्रहशक्त्या**—प्रसन्नताशक्ति सूत्य **महेश**—हे परमेश्वर **सदैव**—द्वहय [illegible]—व्यि छुख चू **ममात्मा**—म्योन आत्मा **तेन**—तवय **स्वात्म मयं मम**—सोरुय [illegible] **समस्तम्**—इ सोरुय जगत्

(भावार्थ)

हे [illegible]! च्यानि प्रसन रोजन सूत्य युस च्य म्य प्यठ छय प्रसन्नता शक्ति यअरअमूच। [illegible] सूत्य छु वुछ म्य भासान इ सोरुय च्योन स्वरूप छुस बु पानय। तवय छु इ सोरुय [illegible]म्योनुय आत्म स्वरूप आसान।

(पद्यार्थ)

च्यानि अनुग्रह किन्य वुछ छुम म्य भासान्। यूत इ स्वरूप च्योन पानय बु आसान्॥
[illegible] ! चूय म्योन आत्मा आसान्। तवय किन्य इ विश्व म्योन आत्मरूप आसान्॥2॥

2. With your grace (Anugraha Shakti) this entire manifest world appears to me one with you and O Supreme Lord! One with me as with you always are in consciousness, I recognize this whole objective world as my own expression.

स्वात्मनि विश्वगते त्वयि नाथे तेन न संसृति भीति कथास्ति–।
सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोह त्रासविधायिषु कर्म गणेषु।। ३।।

(पदार्थ)

स्वात्मनि–पननिसआत्मस मन्ज **विश्वगते**–जगतम्य आसनुक सबब **त्वयि**–च्ये **नाथे**–प्रभो। स्वामी **दुर्धर**–स्यठा मुशकिल **सन्ताप**–दुख (परेशानी) **विमोह**–ब्रमहियू **सत्स्वपि**–आसित् **कर्मगणेषु**–कर्मन हन्द्यडेर **त्रासविधायिषु**–भय दिन् वोल **संसृति भीति कथा** यमि ससारक्यन अनेक बुथ्यन हन्जअख कथा **न अस्तिः**–छयन् रोजान

(भावार्थ)

हे प्रभो यलि जन म्योन पान गव चयिय जगत मयि छु त्यलि अगर म्य स्यठा कर्मन हून्दिन डेर ति छिम इम म्य परेशान करहन। तिम रोजन कति। इ रोजि संसार कथा जन॥

(पद्यार्थ)

म्योन पान यलि जन स्वरूप च्योन आसान्। सारिसूय स्वामी जगतमय आसान॥
दुःख कर्म डेर ब्यियि भय भ्रम भासान्। संसार कथ अदू कति छय रोजान॥ 3॥

3. This manifest world, being with you O Lord! How can it frighten anyone (more so those who have sought refuge in you), even though it seemingly abounds in unbearable sorrow and grief caused by an individual's own multitude of varying actions.

अन्तक मां प्रति माद्दशमेनां क्रोधकरालतमां विदधीहि।
शङ्करसेवनचिन्तनधीरो भीषण भैरवशक्ति मयोस्मि ।। ४।।

(पदार्थ)

अन्तक–नाशक, (महाकाल) **मा**–मअ प्रति–प्यठ **मां**–म्य **दृश**–नज़र **क्रोधकराल तमाम्**–स्यठा क्रोध भरियथ **विदधीहि**–त्राव **शङ्कर !**–भगवान शङ्कर **सेवन**–(सून्जि) सीवा (तू) **चिन्तन**–स्मरण (सूत्य) **धीरो**–(छुम) फ्रख संभीलमुत **भीषण**–स्यठा घोर (भयानक) **भैरव!**–भय दूर करव़न शिव। **शक्ति मयोस्मि**–(छुस) होश तअ ह्यस सुस़।

(भावार्थ)

हे महाकाल! सारिनूय अन्त करन वालि। म्य प्यठ म त्राव इ दृष्टि खोफनाक बु छुस तमिस शान्ति दिनवालिस शङ्कर सन्जि सीवायि तू स्मरण सूत्य व्वुञ स्यठा यथ संसारस मंज होसलअ बोल बन्योमुत।
(हे महाकाल़ चअ क्या करख म्य बु छुस शिव सेवायि किन्य अमर बन्योमुत)

(पद्यार्थ)

...ोच दृष्टि महाकाल मो त्राव म्ये। खोचवुन तू कठोर योस़् छय च्ये॥
...न्त रूप शिव सन्ज़ि पूज समरनि म्ये। व्युञ छुम खोर ठीकरोवमुत म्ये ॥ 4॥

4. O Lord of Death (Antaka)! Do not frown at me with angry frightening looks reflecting darkness, undeterred as I am due to my dedicated service, and contemplation on Lord Shankara and invested as I am with ...ific power of lord Bhairava.

इत्थमुपोढभवन्मयसंविद-दीधितिदारित भूरितमिस्त्रः।
मृत्युर्यमान्तककर्मपिशाचै-र्नाथ नमोस्तु न जातुबिभेमि ॥ ५॥

(पदार्थ)

इत्थं—इथ पाठ्य **अपोढ**—बडवन्य **भवन्मय**—च्यानि स्वरूपचि **संवित**—(अहंता) ज़ान, ज्ञान **दीधिति**—जचव सूतय **दारित**—गुलमुत **भूरि**—स्यठाह **तमिस्त्रः**—अन्धकार **मृत्युर्यम अन्तक** – महाकाल स्वरूप **कर्मपिशाचै**—खोफनाख कर्मव किन्य **नाथ**—हे, स्वामी **नमः अस्तु**—नमस्कार छुय **न जातु विभेमि**—जांह ति न खोचान

(भावार्थ)

हे स्वामी! यलि जन मनुषस च्याञ ज़ान छि सपदान। त्यलि इथिस दास भक्तिस क्या सना करि महाकाल। यिछु त्यलि सपदान यलि च्याञ आसान छि कृपा। यमि कृपाय किञ छुस दास नमस्कार करान।

पद्यार्थ

च्यान्यि ज़ान्य सूत्य यलि ज्ञान आसि आमुत्। तमि ज़ान्य अन्धकार कर्म नीच च्छन्योमुत्॥
काल क्या करि तस, दास च्योन खोचि कथ। छुय प्रणाम म्योनुय करतम ई म्यअ रुत्॥ 5॥

5. O Lord, my obscience to you! This whole objective world being merely an unfoldment of the supreme consciousness (samvit) identical with you O Lord Shiva. I an not any more afraid of darkness carried by ignorance characteristic of the messengers of death e.g. evil and intimidating spirits.

प्रोदितसत्यविबोधमरीचि – प्रोक्षितविश्वपदार्थ सतत्त्वः।
भावपरामृतनिर्भर पूर्णे त्वय्यहमात्मनि निर्वृतिमेमि॥ ६॥

(पदार्थ)

प्रोदित—जअन्य पचठ खचमच **सत्य**—पुज (Truth) **विबोध**—ज्ञान **मरीचि**—ज़च्य **प्रोक्षित**—सग़विध **सतत्त्व**—पननि स्वरूप सत्य **भाव**—पदार्थ **परामृत**—परम अमृत—रूप

निर्भर—भरिथ त्वय्य् **पूर्णे**—च्य परि पूर्णस मन्ज **अहं**—बअ निर्वृतिं **एमि**—आनन्द छुस लबान **विश्व**—जगत

(भावार्थ)

पजि ज्ञानचि जच् छि जान पाठय सगविथ उदयस यिनअ सूत्य सारी जगतचि सअरी पदार्थ छि इ परम अमृत प्रावान। यथअपअठच्य छुस बो परम आनन्द लबान्। तस ईश्वर सन्द ज़ान यमि सन्दि किन्य सोरुय ई विश्व छु उद्भव लबान बुति तमी किन्य परम आनन्दुक भागी बनान ति क्याजि त्यलि छुस अमि ज़्चिय सगवन इवान।

(पद्यार्थ)

पजि ज्ञान बोध जच् उदयसमन्ज इथ् परम अमृत पदार्थन मन्ज सगविथ।
भाव रूप पूर्णस मंज पूर्ण बनिथ-बुति छुस परमानन्द प्रावान॥

6. Fully awakened to the effulgence of the spiritual reality and the true nature of the existential objective world (in other words having realized that transcendental and imminent aspects are both your forms) I feel perpetually immersed in the supreme nectar of oneness with you.

मानसगोचरमेति यदैव क्लेशदशातनुतापविधात्री।
नाथ! तदैव मम त्वदभेद - स्तोत्रपरामृतवृष्टिरुदेति॥ ७॥

(पदार्थ)

मानस गोचरम्—मनस भीदरूपी दुःख **एति यदाएव**- छु इवान यल्यि ज़न् **क्लेशदशा**—भीद व्यवहारुक संकट **ताप बिधात्री अतनु** – संकट स्यठा दिनबोल नाथ!—हे स्वामी **तदाएव**—तमि विजि मम—ग्योन **त्वत**—च्य सूत्य **अभेदस्तोत्र**—अभेद **अस्तुति परामृत**—अमृत (परम **आनन्द वृष्टि**—(अमृत) वर्षा

(भावार्थ)

यमि विजि मन छु भीद दुःखस मन्ज (व्यशयन संसारबुडान् त छिस दुःख ईरनावान्। तमि विजि हे प्रभो! छु अख रूप नाम सुमरण त कीर्तन च्योन अमि संकट मन्ज कडान॥

(पद्यार्थ)

यलि छिम भेदरूप विषय मनि उपदान त्यलि छिम स्यठा दुःख ब्रोन्ठ इवान्।
ही प्रभो! तमि विजि छुस तोता करान युसअ जन अभेद अमृत रूद त्रावान् ॥7॥

7. Whenever I happen to experience afflictions and physical pain caused by the mind and my senses of perception O Lord! I feel overpowered by the instantaneous torrential flow of the reality of my absolute identity

with you (thus totally nullifying the afflictions and the pains); instead I experience the Bliss of perfect quiescence.

शङ्कर सत्यमिदंव्रतदान-स्नानतपो भवतापाविनाशि।

तावक शास्त्रपरामृतचिन्ता स्यन्दति चेतसि निर्वृत्तिधाराः।।८।।

(पदार्थ)

हे शङ्कर!—हे शिव **सत्यं**—पोज छु **इदं**—इ **व्रतदान**—फाक, दान **स्नान तप**— स्नान त तप **भव** - (यमि) संसारूक **ताप**—दुःख **विनाशि**—नाशकरनवोल **तावक शास्त्र परामृत** - च्यानि शस्त्रुक छु थोद अमृत **चिन्ता** - जानिथ **चेतसि** -मनस मन्ज **स्यन्दति**—त्रावान **निर्वृति**—परम आनन्द **धारा**— वर्षा

(भावार्थ)

हे परम शान्ति दिन वालि शिव। इ छु ठीखव कि तप, दान, स्नान छि संसारुक दुःख नाश करान। मगर शिव शास्त्र छु परम आनन्द अमृत (असि) मनस त्रावान।

पद्यार्थ

हे शिव! इ छु पोज़ व्रत दान तप स्नान तिम जन छि दुःख संसारुक निवारान।

च्योन शिव शास्त्र अमृत छु हारान् परमानन्द सुख वर्षुन सु त्रावान् ।

8. O Lord Shankara! It is true that observance of fasts and adherence to various measures of physical disciplines such as cleansing of body (through ablutionary process), restoring to measures of austerity etc. lead to overcoming of worldly afflictions and pains, yet in the in–depth study of scriptures and contemplation thereon sets the mind aflow towards unbroken awareness of God-Consciousness i e Supreme I -Con sciousness (Paraprakash - atma purnahanta).

नृत्यति गायति हृष्यति गाढं संविदियं मम भैरव नाथ !

त्वां प्रियमाप्यसुदर्शनमेकं दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम्।। ९।।

(पदार्थ)

गाढं—सख **नृत्यति**— नचान **गायति**—ग्यवान **हृष्यति**—खुश गच्छान **संविद**—ज़ान **इयं**—यि—**मम**—म्यय **भैरव नाथ!**—भय दूर करन वाल्यि प्रभो **त्वां**—च्यअ **प्रिय**— **ट्ठिचस** **आप्य**—लबिथ **एकं**—कुनुय **सुदर्शनं**—सुन्दर **दुर्लभ**—कठयुन **जनैः**—पुरुषन **समयज्ञ**—समित्य यज्ञ—हवनव (किन्य)

(भावार्थ)

हे शङ्कर! च छुख भय दूर करान ब्ययि अभय दिवान। च्याज ज़ान छि (म्य मन्ज) स्यठा

हर्षस मन्ज गच्छित नय्यान ग्यवान। ज़ान यि परम टोठ बुधि स्यठा सुन्दर। इज़न समदर्श किन्य ति छु ब्ययन कठयुन आसान।

पद्यार्थ

भैरवनाथ! लुबनख म्याञ्ज जाञ्ज चूय
नचवूञ्ज छि गिन्दवूनि छि हर्षस मन्ज सुय।
प्रविथ चअ टाठिच्य मुख वाल्ये कोवलअ
हवनव किन्यतियुस पावुन छु दुर्लभ॥ 9॥

9. O Lord Bhairava, my consciousness dances, sings and dances profoundly in consequence to my beholding your beauteous form which is impossible for the ordinary human being (except under the compelling force of Shaktipat).

वसुरस पौषे कृष्ण दशम्यामभिनवगुप्तः स्तवमिमकरोत्।
येन विभुर्भवमरुसन्तापंशमयति झटिति जनस्यदयालुः॥ १०॥

(पदार्थ)

वसु—आठ (eight) **रस**—श्य (six) **पौष**—पुहस्यतअ **कृष्णदशम्यां**—गटपछि दहम् **अभिनवगुप्त**—अभिनवजी इमं **स्तवम**—इ अस्तुति **अकरोत्**—वनिन। ग्यवन (बनोबुन) **तेन**—अमि सूत्य **विभु**—सर्वव्यापक शिव **भवसर**—संसारुक **संताप**—दुःख **झटिति**—जलजल **शमयति**—शान्त बनावान् **दयालु**—दयावान् (शिव)

(भावार्थ)

सन अरहअठ्स मन्ज पोह गट पछ दहम दोह बनोव इ अस्तुति अभिनव गुप्ताचार्यन। इ अस्तुति परन सूत्य छु सु दयालु दयावान स्यठाह जलद शान्ती दिथ संसार दुःख चटान॥

पदार्थ

अरहअठ सन् चामुत पोह ओस पोहची दहम् आस ब्ययि गट पछि ओस
अभिनव गुप्तन बनोव अस्तुति परि युस सु शिव चटि तस संसार कोस॥ १०॥

10. I. Abhinavagupta have composed this hymn on the 10th day of the dark fortnight of Posh month in the year 68(i.e. around 993 A.D.) Recitation of this hymn invokes the mercy of Lord Shiva, the glorious one, who dispels all sorrows and woes of his dedicated devotees.

OM

IMPORTANCE OF TILAK

By Shiban Ji Kaul

From my childhood I used to apply Tilak on my forehead. But when I crossed teenage I stopped it for a number of years. But good luck was it that during 1980, in the month of January, I was blessed by Darshana of His Holiness Swami Ji Maharaj at Gandhi Nagar - residence of late Pandit Bhagwan Dass Ji Raina. All my nerves vibrated within my body by His Darshan. I could feel that some unique power deeply penetrated within myself and started moving with full velocity. We gazed at each other for a while. I was so much joyous and could feel that we have already met numberless times. It is very difficult to explain my experience. I got so much attracted to Swami Ji that I hardly lost any opportunity to have His Darshan. During this year the 73rd Birth Anniversary of Swami Ji was to be celebrated at His Ashram. I along with my relatives reached ishber Ashram gate at 05.30 a.m. Ashram gates were still closed. Devotees were standing on all the doors waiting eagerly for Lord's Holy Darshan. At 07.00 a.m. Ashram gates were opened. Swami Ji, seated in Pavilion, was in full Samadhi. All of us quietly took a seat in the Ashram lawn, facing the Lord. By 9.00 a.m. the Ashram lawns, Ashram verandah and every place was jampacked. At 9 o'clock sharp recitation of Gurustuti and other devotional songs started. It lasted for about an hour. This followed application of **TILAK** by the Lord Himself on every one, turn by turn. I was astonished to see that Swami Ji applied **TILAK** on every one with full vigour and tirelessly. When birthday Pooja was performed in adjoining Kamla Baba's garden, one of the devotees of Swami Ji, under His direction, took a seat under the Chinar and started applying **TILAK** to all those devotees who could not reach Ashram early.

Once again the occasion revealed those old days when I used to go to the temple in early hours of morning. There I used to put **TILAK** on my forehead. Not only me, but every one put a **TILAK.** Why have we, therefore, given up its application? What could be the reason? Though I was unable to answer this question, but my Master, my Lord, Himself revealed the **SECRET** of application of **TILAK.**

During 1990 when due to turmoil in the Valley people of our commu-

nity fled away, I was one among a few disciples/devotees of Swami Ji, who stayed back in the Valley. I, too, got an opportunity to stay in Ashram. This was the time when Government persuaded Swami Ji to permit a few security personnel also to serve him. Swami Ji would regularly, after performing morning Pooja in Amriteshwar temple, get the **TILAK** pot with him and apply **TILAK** on every one i.e. to disciples/devotees (both Indians and Western) as well as to Security Personnel. Militancy was at its peak in the Valley. Every day not less than thirty to forty people would get killed. People belonging to our community, who did not migrate from Kashmir, were nowhere seen in the market places. In such a situation nobody would dare to move out with a long **TILAK** and that, too, of Kesar (Safron) – quite visible from long distance. But this was the power in that **TILAK** alone which Swami Ji put on our forehead that we would move out and visit any place, fearlessly. Going to market or to areas, highly infested by militancy, with a long **TILAK** on our forehead, was a regular feature for all of us. Swami Ji would tell us that this **TILAK** has tremendous powers and it would work a shield against any mishap.

One day while driving Swami Ji's Car, two elderly bearded men, belonging to another community approached Swami Ji and sought His Blessings. They were so frightened that they had virtually given up hope of their survival in Kashmir. They humbly prayed for bestowing a boon of long and peaceful life. I was stunt when I heard Swami Ji telling them to apply **TILAK** on their forehead regularly. Of course, not the way Hindus apply **TILAK**. Swami Ji advised them to keep little water in their left-hand palm and apply little bit of water by right-hand middle finger at the central place between two eye-brows. This is the guarantee of long and peaceful life. Swami Ji told them to apply this type of **TILAK** to other members of their family as well, if they really wanted to live in peace. Both these persons thanked Swami Ji for His blessings. Whenever I see any one of them, they acknowledge having followed the orders of Swami Ji.

On yet another occasion, when construction work was going at full swing in Ashram, some one from among us had to go to Telbal for sawing timber. Capt. Kachroo and his wife had come from Delhi and were staying in Ashram. Capt. Kachroo requested Swami Ji to allow him to go to Telbal. Swami Ji while permitting Kachroo Saheb to go to Telbal Saw Mill, applied a long **TILAK** on his forehead. Kachroo Saheb was all by himself at the Saw Mill, for whole day. During those days telbal was also

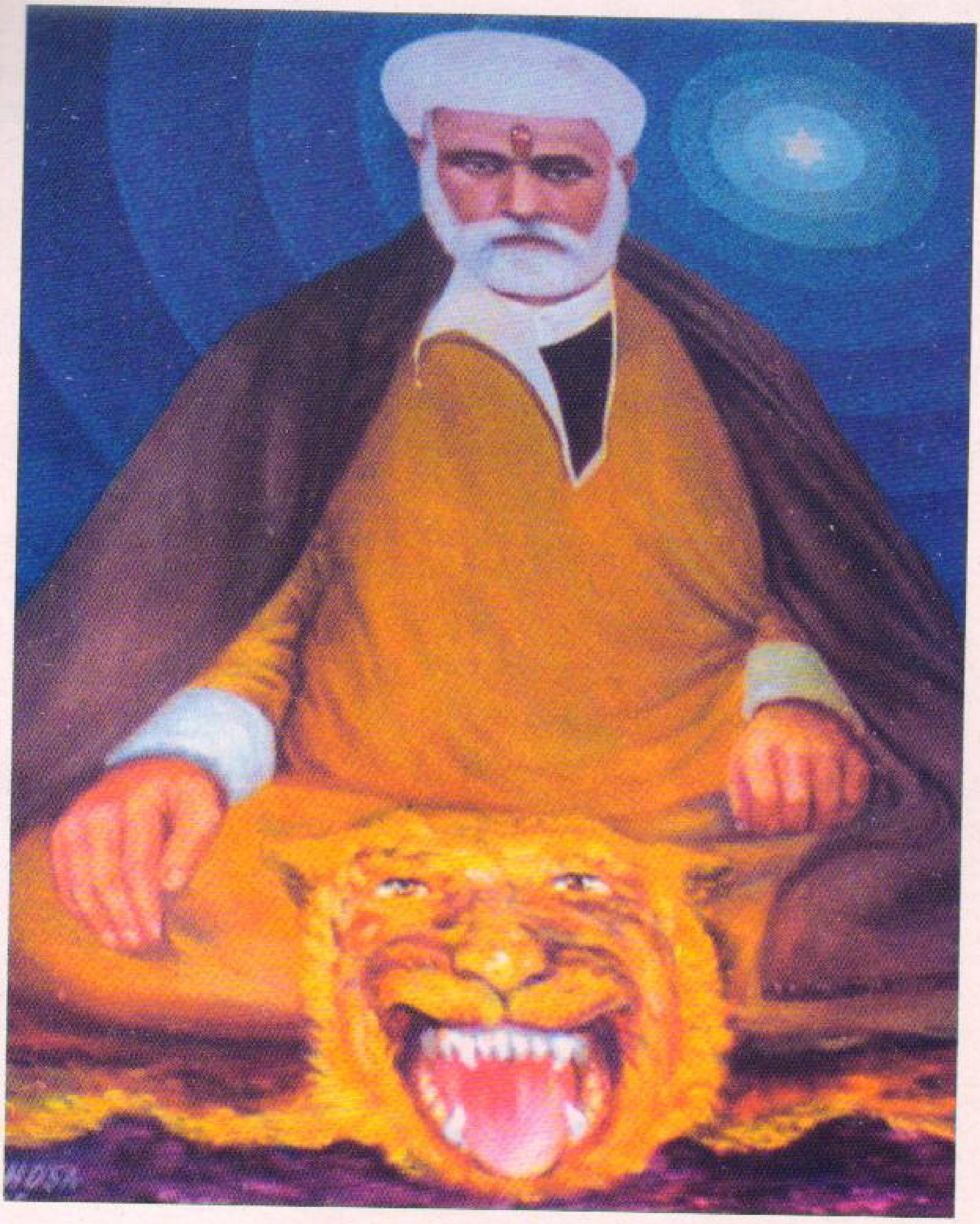

स्वामी जी के सद्गुरु
शैवयोगी प्रचण्ड भास्कर
श्री महताब काकजी

hub of militants' activity.

Even during these long eleven years my son Avinash, who is a student of Army School, Batwara, has been going to School regularly. He puts same Saffron (Kesar) **TILAK.** With Swami Ji's blessings, he has never come across any problem. He doesn't stay at home when calls for hartal and bandh is given by different organizations in Srinagar.

So my humble request to all my brothers and sisters is to follow the commands of our Master, our Lord and apply **TILAK** regularly.

Jai Gurudev

Spare the lamb

To whet your appetite and tickle your buds
Why should
A poor lamb be assaulted
Tormented and killed
With eyes full of lust
And watery mouth
The killer hand that does not shake
Just seals the animals fate
A sin it indeed is
But a crime it should be
To nab and immobilize
And cut a lifeline out
We know it can't speak
We know it is weak
By overpowering the helpless
Do we become men?
My dear brother
Nature abounds
In vegetarian treasures
And sinless leisures
Taking a life
Can never make you stronger
Or recover faster
Or live a second longer

Dr Anusheel Munshi

भारतमातृ - संदेशः

The Message Of Bharat Mata.

रचयिता: - डॉ० बी० एन० कल्ला

By : Dr. B.N. Kalla. Shastri

१. अहो! सुन्दरमुद्यानं कुङ्कमपुष्पवासितम्।
वसन्मर्नौ कथं नष्टं झञ्झावातेन सांप्रतम्॥

Alas : how the beautiful garden fragrant with saffron flowers got spoiled in spring by the storm.

२. कीदृशी वाटिका रम्या पुष्पमालाविभूषिता।
अनभ्रवज्रपातेन शोभा ह्यस्या अपाहृता॥

Alas : how the beauty of beautiful garden decorated with the garlands of the flowers suddenly withered due to bolt from the blue.

३. लज्जां वहति वै माता भारतस्य प्रतिष्ठिता।
दृष्टवा् कुकृत्यं लोकानां कुमार्गगामिनां खलु॥

Bharat Mata feels ashamed at the misdeeds of the evil doors.

४. सन्ति मे केचन पुत्रा आतङ्कवादतत्पराः।
निर्दोषान्ते जनान् घ्नन्ति विभिन्नक्षेत्रसंस्थितान्॥

And how some of my sons given to terrorist deeds trouble and torture the innocent in different areas.

५. लक्ष्यहीना दिशाहीना अटन्ति घातकाः सदा।
छवि कुर्वन्ति मलिनां निजकुत्सितकर्मभिः॥

These directionless and aimless assassins are seen roaming about every day and are spoiling their image through their heinous crimes.

६. हिंसक रक्तपातेन दूयते मे मनः सदा।
कुरुध्वं तादृशं कार्यं प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

My mind is pained by the right of violence and bloodshed, so shun the path of violence and work for the welfare of the mankind.

७. बुद्धाशकयोः सन्देशं साकारं कुरुत सदा।
स्वतंत्रभारत देशं मानवधर्म रक्षके॥

From time immemorial India has been protecting the MANAVA DHARMA (the religion of humanity). Act upon the message of

Lord Buddha and the emperor Ashoka.

८. वादयत पुनः शंखं शान्तिनरदप्रदायकम्।
राष्ट्रस्य हि विकासाय धर्मस्य रक्षणाय च॥

For the development of the nation and the protection of Dharma below the bugle of peace once again.

९. क्वगतो दिव्य सन्देशः, अभयः प्राणदस्तक।
ऋषीणाञ्चैव मुनीनां सज्ज्ञानस्य प्रदायकः॥

Where has gone the divine message of non violence preached by seers and sages who imarted pure knowledge and fearlessness.

१०. प्रज्वालयत चै दीप मद्यान तमहारकम्।
मङ्गलदायकं सर्वं सन्मार्गं दर्शकं खलु॥

Light the candle of knowledge to remove the darkness of ignorance, showing the righteous path to all.

११. ज्योतिरेकं हि सर्वत्र व्यापकं शाश्वतं सदा।
ब्रह्माण्डे माति तज्ज्योति रेकस्य परब्रह्मणः॥

Only the eternal and omnipresent effulgence of Parabrahman– the absolute iluminates the whole cosmos.

१२. दिक्कालाद्यनवक्किन्नमनन्तंममरं तथा।
निर्विकारमनादिव च अलौकिकं स्थिरं सदा॥

That effulgence shines beyond the conditions of time and space. That is infinite immutable eternal and unique.

१३. न निर्वाणंञ्च तद्याति युगे युगे कदाचन।
जगत्प्रलयकालेऽपि सर्वदा वै प्रकाशते॥

That unique effulgence does not extinguish in any epoch. Even on the dooms day it shines every where.

१४. ज्योतिर्नेदंजरूपं नित्यं प्रकाशदायकम्।
चितन्यं शुद्धरुपञ्च ब्रह्मरूपं सदाचलम्॥

It is not unconscious but is always enlightening it is Brahma-rupa, take conciousness and eternal.

१५. शिवरूपं शक्तिरूपं चित्स्वरूपं तथैव च।
प्रकाशविमर्शरूप मानन्दरूपकं सदा॥

That effulgence is shivaropa, shaktiropa, and chitswaropa. That form is Prakasha (consciousness) and Vimarsha (awareness).

१६. भातीदं समरूपं वै सर्वप्राणिबु सर्वदा।
क्रिद्यते नैव शस्त्रेण नक्लेदयति वारिणा॥

This universal effulgence shines always equally among all human beings. Water cannot wet it and weapons cannot cut it.

१७. वातेन कम्पते नेदं बध्यते नैव केनचित्।
अजन्माखण्डरूपञ्च विश्वोत्तीर्णं सदा ननु॥

The wind can not shake it and it can not be bound by any one. It is birthless and indivisible.

१८. अलौकिकमनादिञ्च अन्वाख्यातं महर्षिभिः।
मायातीतं गुणातीतं कालातीतं तथैव च॥

It is said to be unique begning less, (Mayatita) (beyond Maya) Gunatita (beyond the Gunas) and Kalatita (beyond time).

१९. विश्वमयमिदं ज्ञेयं सूक्ष्मरूपं सनानतम्।
नेदं भास्करसदृशं न शीतांशुसमं तथा॥

It pervades the whole universe and the light of the moon and the sun bear no comparison to it. It is subtle and eternal.

२०. मुनिभिः कथितं वाक्यं स्मरणीयं सदा खलु।
इदं वाक्यं महावाक्यं जनकल्याणकारकम्।

This utterance of the wise is worth remembering for ever. The Upanishadik utterance (Mahavakya) is the bestower of good to all.

२१. भेदभावं परित्यज्य समभावं निषेवत।
सद्गतिं समभावेन लभन्ते मानवाः सदा॥

Discard discrimination and practice equality with all. Mortals attain the state of noblity by treating all as equals.

२२. मद्वचः पालनं कुर्यात् यदा हि मानवो भुवि।
समचाप्स्यति स शान्ति नात्र कोऽपि हि संशयः॥

Whenever my advice is followed by a person in this world he will doubtless attain peace.

२३. ब्रह्मरूपमिदं सर्वं विश्वंस्थावरजङ्गमम्।
मानवपुजनं श्रेष्ठं ऋषिभिः परिकीर्तितम्॥

This moveable and immoveable cosmos is the form of Brahman (Ultimate truth). The seers consider the worship of men as supreme.

२४. धर्मस्य लक्षणं प्रोक्तं युगधर्मस्य चालकैः।

अंसा समता प्रीति विश्वबन्धुत्ववर्धिनी।।

The epoch makers have defined Dharma as non–violence equality and amity furthering the universal brotherhood.

२५. अधर्मं धर्ममित्याहु र्जक्त अज्ञानकारणात्।
अन्धकारमयं तेवां जीवनं मर्हितं सदा।।

People out of ignorance consider Adharma (unrighteousness) as Dharma (righteousness). Their life is always condemnable and full of darkness.

२६. धर्माणां मूल तत्त्वेबु न भेदो दृश्यते क्कचित्।
मानवधर्म उत्कृष्टो मुनीनां वचनं यथा।।

There is no difference among the fundamental elements of different Dharmas. Universal Dharma (Manava Dharma) is superior to all according to the wiseor—seers.

२७. तस्मात् सर्वैः प्रयत्नेन कर्तव्यं धर्मपालनम्।
धर्मस्य पालनेनैव विश्वशान्तिर्हि निश्चिता।।

So every one should make efforts in following Dharma. The world - peace can be a chieved only by Dharma (right conception).

२८. परेषां हितलग्नास्तु ते यान्ति परमं पदम्।
तेषां मतेन सर्वत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्।।

They attain the highest position who are engaged inthe welfare of others. They hold the entire universe as their own family.

२९. "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"
विवेकानन्द दृष्टि र्हि पालनीया सदा बुधैः।।

Awake : Arise : Donot stop, till the goal is achieved. The wisemen should follow the view of Swami Vivekananda.

३०. सर्वेषु प्राणिषु श्रेष्ठो मानवो हि प्रकीर्तितः।
रचनात्मक कार्याणि करोतु मानवः सदा।।

Man is superior to all living beings. So he should even devote himself in constructive path.

३१. राष्ट्रभक्ता राष्ट्रवीरा राष्ट्रगौरववर्धकाः।
वन्द्यास्ते जगतिलोका आदर्शचरितात्मनः।

Those brave and dedicated (sons) devoted to the glory of the Nation deserve appreciation and the highest esteem and are truely

ideal characters.

३२. शान्तिभङ्ककरा हिंसा निन्द्यते साधुभिः सदा।
तस्मादेवा विनाश्यैव मनसा कर्मणा तथा॥

Breakers of peace are always condemned by the noble. Since violence should always be shunned both in mind and in deed.

३३. उत्तिष्ठताधुना पुत्राः शान्तिमेरीप्रधोबकाः।
शवथं कुरुतेदानीं देशस्याखण्डताकृते॥

My children, the torch bearers of peace, wake up and take the oath for the integration of the Motherland and dedicate yourselves for the integration of the motherland.

३४. क्षिप्रं प्रोम्यतावॄणि दुःखितानां सहर्षकम्।
नारीणां पुरुषणाञ्च दलितानां तथैव हि॥

Wipe off immediately the tears of men, women. down trodden and the oppressed.

३५. कण्टकाकीर्णमार्गोऽयं विषमोगहनः किल।
कण्टककर्मणोनैव प्रमदितव्यं कदाचन॥

Even if this path is beset with thorns dreadful and dark, thou should not show your back on the path of weeding out such thorns.

३६. उप्यन्तां पद्मपुष्पाणि कोणे कोणे पदे पदे।
येषां सुवाससा सर्वे दृष्येयुः सर्वदा जनाः॥

Sow the seeds of the lotus in every direction of country, so that the fragrance of the lotus flower (Pamposh in Kashmir) may reach and be enjoyed by all.

३७. जातिभेदेऽप्यभिन्नैस्तु उष्यतां भारते जनैः।
स्नेह सद्भावयुन्तौस्तु भिन्नधर्मानुयायिभिः॥

People must live with love as one nature having the —different casts, seeds & covers in India.

People belonging to different casts, creeds colours must live with love as one nature in India.

कश्मीरी भाषायां - पम्पोश (कंवल)

गृहसंकेतः—
५७/८, त्रिकूटानगर, जम्मू
दूरभाष - ४७१६१६

दैव, पौरुष और आत्मबल–
कश्मीर अद्वैत शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. जगीरसिंह

रीडर, संस्कृतविभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

भारत एक अध्यात्म प्रधान देश रहा है और यहां के अनेकविध वातावरण, रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-व्यवहार एवं चिन्तन-प्रवाह के होते हुये भी एक विशेष तथ्य यह रहा है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि एवं मनीषियों ने मानवमात्र के कल्याण के लिये अनेकता में एकता का दर्शन किया है। इस एकत्व ज्ञान की सर्वसाधारण को भी अनुभूति हो सके, इसके लिये अनेकविध सिद्धान्तों, मतों अथवा प्रणालियों का उनके मानसिक स्तर की योग्यतानुसार प्रवर्तन एवं आश्रयण किया गया। परन्तु, ऐसा होते हुये भी लक्ष्य में एकता ही रही। परमहंस श्रीरामकृष्ण के अनुसार–"नाना मत–नाना पथ" ही हैं, जो नाना नदियों के देशकाल आकार के वैविध्यग्रस्त होने पर भी एक समुद्र-गमन की तरह एक ही परमार्थसत्ता की प्राप्ति के द्योतक हैं।

दैव (भाग्यवादी)–भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन धर्म पूर्वक अर्थोपार्जन सहित उसके सम्यक् उपभोग (काम) से मोक्ष (परमतत्त्व) की प्राप्ति का पोषक है। यह धर्म ही प्राणियों के अच्छे-बुरे (शुभाशुभ) कर्मों के फल का नियन्त्रक "दैव" कहा जाता है। इसी के अपर नाम "भविष्य" "स्वभाव" "अदृष्ट" "भाग्य" "अपूर्व" "भवितव्यता" "नियति" "प्रारब्ध" "विधि" होनी "भावी" आदि हैं। इस भाग्यवाद (दैववाद) को मानने वाले मानते हैं कि "कर्म" की तीन विधायें होती हैं–संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमान कर्म। जन्म-जन्मान्तरों के शुभाशुभ कर्मों के संचय को 'संचित कर्म'[1] कहते हैं। उसमें से विशेष कर्मफल, जिसकी आवश्यकता, उपयोगिता एवं प्रभाववश वर्तमान जन्म, आयु, कर्म, विद्या, भोग, आजीविका, विवाह और मृत्यु आदि निर्धारित होते हैं, "प्रारब्धं कर्म" कहा जाता है।[2] वह कर्म जो वर्तमान जन्म में किया जाता है, "क्रियमाण कर्म" कहलाता है। इन कर्मों में से "संचित" एवं "क्रियमाण" कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से दग्ध हो सकते हैं, परन्तु "प्रारब्ध कर्म" का फल अवश्यमेव भोगना ही पड़ता है। इसी प्रकार यदि ज्ञान न हो तो क्रियमाण कर्म ही संचित एवं अन्ततः भावी (प्रारब्ध) बन जाता है। अतः कर्मफलवाद

---

1 "पूर्वदेहो...............मिताक्षरा।"

2 "आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पञ्चैतानि इह सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥" पञ्चतन्त्र।

के अनुसार वर्तमान कर्म के अनुसार ही उसका फल भी अवश्य ही मिलता है।[3] शुभ का शुभ, अशुभ का अशुभ। पुनः "सकाम" और "निष्काम" कर्म के फल में भेद होता है। इसी प्रकार पुनः कर्म के नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, निषिद्ध, काम्य आदि विविध भेद होते हैं और उनके फलों में भी तदनुसार ही अन्तर होता है। फल की शीघ्र अथवा देरी से प्राप्ति में भी कर्म की प्रवृत्ति तारतम्य एवं देश, काल, कारण तथा उसके लक्ष्य की सौम्यता-क्रूरता अथवा लघुता-गुरुता का प्रभाव होता है। परन्तु, नियति अटल ही रहती है, उसको कोई टाल नहीं सकता।[4] जो कर्मफल अवश्यम्भावी है, उसका प्रतिकार सम्भव नहीं होता।[5] भवितव्यता के अनुसार ही बुद्धि परिवर्तित हो जाती है।[6]

इसलिये ही कहा जाता है कि कोई सर्वथा असुरक्षित वस्तु वन में भी दैव से रक्षित होने पर बची रहती है, परन्तु इसके विपरीत होने पर गृह में सम्यक् रक्षित होने पर भी नष्ट हो जाती है।[7] ईश्वर भी भाग्य में लिखित को टालने में असमर्थ है—ऐसा उनका मानना है।[8] भावी के प्रभाव से ही प्रत्यासन्न (शीघ्र आने वाली) दुःखद अथवा सुखद दशा के अनुकूल प्राणियों की बुद्धियाँ प्रायः परिवर्तित हो जाती हैं।[9] मन्दभाग्य होने पर महापुरुषों

---

[3] "लोकेऽथवा तनुभृतां निजकर्मपाकं, नित्यं समाश्रितवतां
सुहितक्रियाणाम्। भावार्जितं शुभमथाप्यशुभं निकामं,
यद्भावि तद्भवति नात्र विचारहेतुः॥" —पञ्चतन्त्र, श्लो.।

[4] यथा कथ्यते—"गोविन्दो मातुलो यस्य, पिता यस्य धनञ्जयः।
अभिमन्यु रणे शेते, नियतिः केन वार्यते॥

[5] "अवश्यम्भाविभावानां प्रतिकारो भवेद् यदि। तदा दुःखे न लिप्येरन्
नलरामयुधिष्ठिराः॥ यद् भावि न तद्ऽभावि भवेच्चेन्नतदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥

[6] (क) "तादृशी जायते बुद्धिर्यादृशी भवितव्यता।"
(ख) विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।"

[7] "अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥" पञ्चतन्त्र।

[8] "को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तु(तो)र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे॥"
—उत्तररामचरितम्।, मालतीमाधवम्।

[9] "पौलस्त्यः कथमन्यदारहरणे दोषं न विज्ञातवान्
रामेणापि कथं न हेमहरिणस्यासम्भवो लक्षितः।
अक्षैश्चापि युधिष्ठिरेण सहसा प्राप्तो ह्यनर्थः कथं,
प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते॥" — उत्तररामचरित।

को भी विवेक बुद्धि नष्ट होकर कुमार्ग में प्रवृत्त हो जाती है।[10] भाग्यवश ही पूर्वकृत अपने अच्छे या बुरे कर्मों का उसी स्थान से, उसी कारण से, उसी समय, उसी प्रकार, वहीं और उतना ही फल मिलता है, जिस स्थान से, जिस कारण से, जिस समय, जिस प्रकार, जो और जितना तदनुसार प्राप्य है।[11]

किसी स्थान, काल, पदवी, गुण अथवा परिस्थिति विशेष की अपेक्षा "दैव"[12] ही बलवान होता है, अन्यथा सुदूर आकाश, गहरे समुद्र सुरक्षित भूमि आदि में रहने वाले पशुओं या प्राणियों का बन्धन, बुद्धिमानों के भी निर्धन होने अथवा सूर्य-चन्द्र का भी राहु ग्रस्त होना सम्भव नहीं था।[13] अतः परिश्रम न करने पर भी, पूर्वजन्म में किये हुये अच्छे-बुरे कर्मों का फल मनुष्यों को विधि की प्रेरणा से मिल ही जाता है।[14] जिस स्थान, जिस समय और जैसी आयु में मनुष्य ने पूर्वजन्म में शुभाशुभ कर्म किया है, वह उसको उसी तरह, उसी समय और उसी आयु में भोगना पड़ता है।[15] मनुष्यों की इच्छा ही उनके जन्मान्तर के कर्मानुसार बने हुये अच्छे-बुरे भविष्य को बहुत पहिले ही सूचित कर देती है। जैसेकि कलापरूपी चिह्न उत्पन्न न होने पर भी मोर का बच्चा, शानदार कदमों से

---

[10] "कृतान्तपाशबद्धानां दैवोपहतचेतसाम्।
बुद्धयः कुब्जगामिन्यो भवन्ति महतामपि॥"—उत्तररामचरित।

[11] "यस्माच्च येन च यदा च यथा च यच्च,
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च,
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति॥"—उत्तररामचरित।

[12] "दैव इति=कर्मसिद्धिः कर्मफलप्राप्तिः इष्टानिष्टलक्षणा"या.स्मृ.,वी.मि. मिता.।

[13] (क) "अर्धार्धाद्योजनशतादामिषं वीक्षते खगः।
सोऽपि पार्श्वस्थितं दैवाद्बन्धनं न च पश्यति॥" उत्तररामचरित।

(ख) "रविनिशाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गविहङ्गमबन्धनम्।
मतिमतां च निरीक्ष्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥

(ग) व्योमैकान्तविचारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं,
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मीनाः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहास्ति किं च सुकृतं कः स्थानलाभे गुणः
कालः सर्वजनान्प्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि॥"

[14] "अकृतेऽत्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना संनियोजितम्॥" - तदेव।

[15] 'यस्मिन्देशे च काले च वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते॥" - तदेव।

जलाशय से लौटता हुआ – यह मोर है–ऐसा जान लिया जाता है।[16] परंतु विधाता के विपरीत होने पर पौरुष कुछ नहीं कर सकता।[17] इसी प्रकार, भाग्य में लिखी हुई अतएव पाने योग्य वस्तु को पा ही लेता है, दैव भी उसे रोक नहीं सकता। इसलिए न चिन्ता करनी चाहिए और न आश्चर्य ही, क्योंकि जो वस्तु जिसकी है, वह उसे ही मिलेगी, दूसरों को नहीं।[18] भाग्य प्रतिकूल होने पर धन उपार्जित अथवा प्राप्त करने पर भी उसका उपयोग (भोग) संभव नहीं होता।[19] जो होने वाला नहीं होता, वह कदापि नहीं होता एवं जो होने वाला है, वह बिना किसी यत्न के ही संपन्न हो जाता है। जो प्राप्त नहीं होने वाला है, वह हाथ में आकर भी नष्ट हो जाता है।[20] जैसे सहस्त्रों गायों के मध्य में से बछड़ा अपनी माता को पहचान लेता है, वैसे ही पूर्वकृत् कर्म (का फल) कर्ता को मिल जाता है।[21] पूर्वकृत् कर्म सोते हुये के साथ सोता एवं चलते (जागते) हुये के साथ चलता (जागता) है, अतः सदा आत्मा का अनुसरण करता है।[22] जैसे धूप और छाया परस्पर सुसंबद्ध रहते हैं, वैसे ही कर्ता तथा कर्म एक दूसरे से सदा बंधे रहते हैं।[23] मनुष्य सब कुछ जानते हुये भी जब किसी निन्दित कर्म में प्रवृत्त होता है, तो ऐसा करने के पीछे एकमात्र कारण दैव (होनहार) ही है। यदि ऐसा न होता, तो संसार में कोई भी किसी गर्हित कर्म को न

---

[16] "वाञ्छैव सूचयति पूर्वतरं भविष्यं, पुंसां यदन्यतनुज–
त्वशुभं शुभं वा। विज्ञायते शिशुरजातकलापचिह्नः,
प्रत्युद्गतैरपसरन्सरलः कलापी॥"–तदेव,

[17] "छित्त्वा पाशमपास्य कूटरचनां भङ्क्त्वा बलाद्वागुरां,
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलान्निर्गत्य दूरं वनात्।
व्यांधानां शरगोचरादपि जवेनोत्पत्य धावन्मृगः,
कूपान्तः पतितः करोतु विधुरे किंवा विधौ पौरुषम्।"–तदेव,

[18] "प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो दैवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्॥"–तदेव,

[19] "अर्थस्योपार्जनं कृत्वा नैव भोगं समश्नुते"–तदेव, 2/127

[20] "न हि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता चास्ति॥"–तदेव,

[21] "यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पुराकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥"–तदेव, 2/130

[22] "शेते सह शयानेन गच्छन्तमनुगच्छति।
नराणां प्राक्तनं कर्म तिष्ठेत्त्वथ सहात्मना॥"–तदेव, 2/131

[23] "यथा छायातपौ नित्यं सुसंबद्धौ परस्परम्।
एवं कर्म च कर्ता च संश्लिष्टावितरेतरम्॥"–तदेव, 2/132

करता।[24] विधि के विपरीत होने पर ही घाव में ही सदा चोट लगना, धनाभाव एवं भूख बढ़ जाना, विपत्ति एवं वैर बढ़ जाना इत्यादि–सभी प्रकार के अनर्थ बढ़ जाते हैं।[25] दैव अचिन्तनीय और बलवान् होता है, पुरुषार्थ नहीं। जैसे कभी तो जल आकाश से जलाशय में गिरता है, तो कभी पाताल से निकलता है, ऐसे ही भाग्यवश जीव उन्नति-अवनति को प्राप्त करता है।[26] दैव की गति बड़ी विचित्र है। भाग्य के क्रूर होने से सुबुद्धिमान् भी उसकी मार से नाश को प्राप्त हो जाते हैं, जबकि अनुकूल भावी से मंदबुद्धि भी अपने कुल में बढ़ते-फूलते सुखपूर्वक रहते हैं।[27] प्राणियों का दैवयोग से ही शुभाशुभ होता है, अन्यथा रावण जैसा महान् विद्वान् एवं योद्धा–त्रिकूट पर्वत जिसका किला, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा, कुबेर से धन प्राप्ति और शुक्राचार्य का रचा शास्त्र था–विपत्ति में न पड़ता।[28]

होनहार (भवितव्यता) के अनुसार ही बुद्धि उत्पन्न होती है। उद्योग-धंधा भी वैसा ही होता है और सहायक भी वैसे ही मिलते हैं।[29] विधि का विधान अद्भुत है। यह रङ्क को राजा और राजा को रङ्क तथा धनी को निर्धन और निर्धन को धनी कर देता है।[30] किसी को भी मन का अभीष्ट सुख न मिलने से प्रमाणित होता है कि सब कुछ भाग्य के अधीन है–इसलिये संतोष का ही आश्रय लेना चाहिये[31] यद्यपि सभी प्रकार के फल-भोग कर्म (दैव) के नियन्त्रण में ही होते हैं एवं बुद्धि भी उसका अनुसरण करने वाली होती है,

---

[24] ''जानन्नपि नरो दैवात्प्रकरोति विगर्हितम्।
कर्म किं कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कथम्॥''–तदेव।

[25] ''क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णमन्नक्षये वर्धति जाठराग्निः।
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति वामे विधौ सर्वमिदं नराणाम्॥''–तदेव।

[26] ''पतति कदाचिन्नभसः खाते पातालतोऽपि जलमेति।
दैवमचिन्त्यं बलवद् बलवान्नतु पुरुषकारोऽपि॥''–तदेव।

[27] ''सुबुद्धयोऽपि नश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः। स्वल्पधीरपि तस्मिंस्तु कुले नन्दति सन्ततम्॥''–तदेव।

[28] ''दुर्ग त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधा धनदश्च यक्षः।
शास्त्रं च यस्योशनसा प्रणीतं स रावणो दैववशाद्विपन्नः॥''–तदेव।

[29] ''नादृशी, जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायकास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥''–चाणक्य नीति दर्पण।

[30] ''रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः॥''–तदेव।

[31] ''ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवायत्तमतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत्॥''–तदेव।

तथापि बुद्धिमान् आचार्य सोच-विचारकर ही कार्य करते हैं।[32] परंतु, बलवत्ता सर्वत्र दैव की ही होती है। विनाश अथवा विपत्ति (अवनति आदि) में बुद्धि की सोच भी विपरीत परिणामदायिनी हो जाती है अन्यथा राम का सर्वथा सुवर्ण मृग के असम्भव होने पर भी उसके लिये लालायित होना, युधिष्ठिर का द्यूत-क्रीड़ा करना आदि संभव नहीं था।[33] भाग्यवश ही तो समुद्र के पिता और, लक्ष्मी के सहोदरी होने पर भी शङ्ख भीख मांगता है।[34]

भाग्य चक्र की भांति घूमता है।[35] इसलिये सदा दिन एक जैसे नहीं रहते। उनमें दैव के समुचित विधान अनुसार परिवर्तन होता ही है।[36] भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि ईश्वर किसी प्राणी का कर्तृत्व अथवा कर्मत्व नहीं रचता है। इसी प्रकार किसी कर्म विशेष का विशेष फल अथवा संयोग निमित्त भी नहीं बनता है, प्रत्युत् "स्वभाव" (दैव, प्रकृति) ही सर्वत्र प्रवृत्त होता है।[37] अतः विद्या और पौरुष की अपेक्षा भाग्य ही सर्वत्र फलित होता है।[38] उपनिषद् भी पूर्व कर्म के फल (दैव) अनुसार ही देव, मानव, तिर्यक्योनि अथवा लोकादि की प्राप्ति बतलाता है।[39]

पौरुषकर्मवादी—पौरुष अथवा कर्मवादी उद्यम में ही विश्वास करते हैं। इनका मानना है कि कर्म से ही दैव बनता है।[40] अतः कर्म ही प्रधान है और इसके बल पर व्यक्ति जैसा चाहता है, वैसा ही फल प्राप्त कर सकता है। संत शिरोमणि तुलसीदास भी

---

[32] "कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधियश्चार्या, सुविचार्येव कुर्वते॥"—तदेव।

[33] "न निर्मितः चैव न दृष्टपूर्वे न श्रूयते हेममयः कुरङ्गः।
तथापि तृष्णा रघुनन्दस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥"—तदेव।

[34] "पितारत्नाकरो यस्य लक्ष्मीयस्य सहोदरी।
शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्नदत्तमपतिष्ठते॥"—तदेव।

[35] "एष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः॥"—मृच्छकटिकम्।

[36] (क) "भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति"—तदेव।
(ख) "भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति"—चारुदत्तम्
(ग) "चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति"—स्वप्नवासवदत्तम्

[37] "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥"—भ. गी.।

[38] "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषं"—लोकोक्ति

[39] "योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥"—कठोप.।

[40] "अभिव्यक्तमस्मिन देहे प्रत्यक्षीक्रियमाणं युद्धादि.पुरुषव्यापाररूपं, पौरुषमुच्यते"—या.स्मृ, पीयमि. मिता।

ऐसा ही मत श्रीरामचरितमानस में अभिव्यक्त करते हैं[41] पंचतंत्र में कहा गया है कि उद्यमी नरश्रेष्ठ को ही लक्ष्मी (धन संपत्ति) प्राप्त होती है, ''भाग्य'' ही सब कुछ है अथवा "भाग्य'' से ही सब कुछ मिलता है—ऐसा कायर पुरुष ही कहते हैं। भाग्य को ठुकरा कर भरसक प्रयत्न करना चाहिये। यदि फिर भी सफलता नहीं मिलती, तो क्या दोष है? इसका विचार करना चाहिये।[42]

जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो कर्मशील व्यक्ति की बुद्धि के लिये अप्राप्य अथवा अकार्य एवं असंभव हो। इसलिये बुद्धि से सम्यक् विचार कर कर्म करते रहना चाहिये।[43] शुभ कर्मों के लिये ही उद्योग करना चाहिये और इस प्रकार धर्मपूर्वक कर्म करते रहने पर भी यदि कहीं दैवात् विपत्ति आ पड़े, तो बुद्धिमान् को चाहिये कि उसकी शांति के लिये विशेष नय का उपयोग करे, क्योंकि लोक में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि आग से जले हुये पर सेंक भी उपकारी होता है।[44] धीर और मनस्वी उद्यमी के लिये क्या स्वदेश और क्या विदेश? वह जिस देश में भी रहता है, अपने पौरुष बल से बन में शेर की तरह सब कुछ अपने अधीन कर लेता है।[45] उत्साहयुक्त, कार्य में देर न लगाने वाले, कार्यों के सिद्धांत तथा निर्माण पद्धति को जानने वाले, मद्यपान आदि बुरे व्यसनों से पृथक्, बहादुर, उपकार मानने वाले और स्थिर मित्रता वाले पुरुष को लक्ष्मी स्वयं अपने निवास के लिये खोज लेती है।[46] जैसे एक हाथ से ताली नहीं बजती है, वैसे ही कर्म

---

[41] ''कर्मप्रधान जगत् रचि राखा। जो जस चाहा, सो तस फल चाखा॥''

[42] ''उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न
सिध्यति कोऽत्र दोषः॥''—पञ्चतन्त्र।

[43] ''अवध्यं चाथवागम्यमकृत्यं नास्ति किञ्चन।
लोके बुद्धिमतां बुद्धेस्तस्मात्तां विनियोजयेत्॥''—तदेव।

[44] ''धर्मार्थं यततामपीह विपदो दैवाद्यदि स्युः क्वचित्,
तत्तासामुपशान्तये सुमतिभिः कार्यो विशेषान्नयः।
लोके ख्यातिमुपागतात्र सकले लोकोक्तिरेषा यतो,
दग्धानां किल वह्निना हितकरः सेकोऽपि तस्योद्भवः॥''—तदेव।

[45] ''को धीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतो,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गूलप्रहरणैः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः॥''—तदेव।

[46] ''उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं मार्गति वासहेतोः॥''—पञ्चतन्त्र।

(उद्यम) के बिना फल अर्थात् भाग्य भी नहीं बनता है।[47] दैव कुछ नहीं, पूर्वकृत् कर्म का फल ही होता है और उसके मिलने पर भी उद्योग के बिना वह सार्थक नहीं होता। जैसे पूर्वकृत् कर्म से प्राप्त और सामने पड़ा हुआ भी भोजन हाथ की चेष्टा के बिना स्वयं मुख में नहीं जाता।[48]

इसलिये केवल मनोरथ अथवा कल्पना करने से कार्य सफल नहीं होते हैं, निश्चित रूप से उद्यम (पौरुष) करने से ही सिद्ध होते हैं। जैसे सोये हुये सिंह के मुख में स्वयं ही मृग प्रवेश नहीं करते हैं।[49] पौरुष के बिना अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिये, सदैव कर्म करना चाहिये। 'जो होना है, सो हो जायेगा' ऐसा कायर लोग सोचकर आलसी बने रहते हैं।[50] उत्साहपूर्वक, दत्तचित्त होकर, सुनीति से उद्योग करने वाले को ही अचल लक्ष्मी (stable & good fortunes) की प्राप्ति होती है।[51] इसलिये 'भाग्य से ही सब कुछ होगा'—ऐसा सोचकर पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे पुरुष-व्यापार के बिना तिलों से तेल नहीं निकलता।[52] जो सदा उद्यमशील नहीं रहता और जो प्राप्त है, उसे भाग्य की देन समझकर संतुष्ट रहता है वास्तव में वही मंदभाग्य होता है। वह प्राप्त लक्ष्मी को भी पौरुष के बिना खो बैठता है।[53] इसलिये, केवल शारीरिक परिश्रम ही नहीं, प्रत्युत मानसिक उद्यम (उत्साह) भी परमावश्यक है। यह चित्त का उत्साह (प्रसन्नता, उमंग) ही है, जो सफलता या असफलता का हेतु होता है।[54] जब तक पुरुष साहस (उद्यम) नहीं करता है,

---

47 "यथैकेन न हस्तेन तालिका संप्रपद्यते। तथोद्यमपरित्यक्तं न फलं कर्मणः स्मृतम्॥"—तदेव।

48 "पश्य कर्मवशात्प्राप्तं भोज्यकालेऽपि भोजनम्।
हस्तोद्यमं बिना वक्त्रे प्रविशेन्न कथं चन॥"—तदेव।

49 "उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥"—तदेव।

50 उद्यमेन विना राजन्न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः।
कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥"—तदेव।

51 "यत्रोत्साहसमारम्भो यत्रालस्यविहीनता।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम्॥"—तदेव।

52 "तद्दैवमिति संचिन्त्य त्यजेन्नोद्योगमात्मनः।
अनुयोगं विना तैलं तिलानां नोपजायते॥"—तदेव।

53 "यः स्तोकेनापि सन्तोषं कुरुते मन्दधीर्जनः।
तस्य भाग्यविहीनस्य दत्ता श्रीरपि मार्ज्यते॥" — तदेव।

54 "सिद्धं वा यदि वाऽसिद्धं चित्तोत्साहो निवेदयेत्।
प्रथमं सर्वजन्तूनां तत्प्राज्ञो वेत्ति नेतरः॥"—तदेव।

तब तक उसके लिये गुण का उत्कर्ष नहीं होता। जैसे जब सूर्य तुला राशि पर चढ़ता है, तभी मेघों को जीतता है।[55] उपनिषद् भी शुभ कर्मों को करते हुये शत वर्षों तक जीवित रहने की इच्छायुक्त होने का उपदेश देती है।[56] कर्म अथवा उद्यम के माध्यम से अभीष्ठ फलों (कामनाओं) की पूर्ति संभव है। श्रुति-स्मृति भी कर्म की महत्ता का निरूपण करती हुई कहती हैं कि इससे स्वर्ग प्राप्ति, धन-संपत्ति की उपलब्धि, किसी आपदा अथवा क्लेश की शांति, वर्षा कराने, आयु बढ़ाने स्वास्थ्यलाभ एवं अभ्युदय की प्राप्ति के साथ-साथ अभिचार कार्य (पर-पीड़ादि) भी संभव है।[57] नीति शास्त्र भी उद्यम से ही धन-संपत्ति, सुख-ऐश्वर्य एवं अभ्युदय की प्राप्ति द्योतित करते हैं।[58] प्राणि को सदैव उद्यमशील रहते हुये अपने शुभाशुभ का भी विचार करना चाहिये। यदि किसी प्रकार की मान हानि धन-संपत्ति विरह, उन्नति बाधा अथवा मानसिक क्लेश वा उग्र शारीरिक कष्टादि की पीड़ा हो, तो भाग्य के भरोसे उत्पीड़ित नहीं रहना चाहिये, प्रत्युत् दोष दूर करने हेतु उत्कट प्रयास करने चाहिएं। लौकिक उपचार कर्मों से शांति न हो तो वैदिक कर्म यथा वेद पाठादि[59] और देव अथवा ग्रह पूजनादि कर्म अवश्य कर लेने चाहियें, जिन से देव वा ग्रह की तुष्टि से प्राणी अभीष्ट कर्मसिद्धि (फल-प्राप्ति) का पात्र बन सकता है।[61] भगवान् श्रीकृष्ण भी गीता में इहलौकिक एवं पारलौकिक फलों की प्राप्ति के साथ-साथ ब्रह्मयोग उपलब्धि में कर्म कौशल को श्रेष्ठ मानते हैं, जिसके अनुसरण से जनकादि भी सिद्धि को प्राप्त हुये।[62] यज्ञ कर्म से[63] एवं कर्म ब्रह्म से उत्पन्न होने से सर्वथा

---

[55] "दुरधिगमः परभागो यावत्पुरुषेण साहसं न कृतम्।
जयति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि॥"—तदेव।

[56] "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेच्छेच्छतंसमाः"—ईशोप./

[57] (क) "श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाऽभिचरन्नपि॥" — याज्ञवल्क्यस्मृति।
(ख) "श्रीकामो यजेत्" — श्रुति

[58] "साहसे श्री वसति" — नीतिशास्त्र

[59] "यं यं क्रतुमधीयीत तस्य तस्याऽऽप्नुयात् फलम्"—या. स्मृ.।

[60] "यस्य यश्च यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत्।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ॥"—तदेव।

[61] "ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः"—तदेव।

[62] "योगः कर्मसु कौशलम्"—भ. गी.।

[63] "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः"—भ. गी.।

[64] "यज्ञः कर्मसमुद्भवः"—भ. गी.।

पवित्र एवं अनुकरणीय है। अतः कार्य (कर्त्तव्य, शुभ) कर्म सदा करते रहना चाहिये।[64]

स्वभाववादी–स्वभाववादियों का मानना है कि सब कुछ स्वभाव के अनुसार ही होता है। वह ही सर्वत्र कारण है। कोयल की आवाज सुरीली और कौआ की कर्कश किसने की है? हंसों का रङ्ग श्वेत और मोर का चित्रित किसने किया? स्वभाव से ही ऐसा होता है, कोई दूसरा इसमें कारण नहीं है।[67] गीता में भी कहा गया है कि ईश्वर लोक के कर्तृत्व अथवा कर्मों का सृजन नहीं करते हैं, न ही कर्मों के होने वाले शुभाशुभ फल का संयोग करते हैं, प्रत्युत् स्वभाव ही सर्वत्र प्रवृत्त होता है। वह न ही किसी के पाप का ग्रहण (नाश) करते हैं और न ही पुण्य का समर्पण स्वीकार। वास्तव अज्ञान से ज्ञान के आवृत्त रहने से जीव मोहित होकर ऐसा सोच लेते हैं।[68] अतः जीव के जीवन, आयु, मृत्यु, भोग, योन्यन्तर गमनादि में स्वभाव ही कारण है।

कालवादी–दूसरे मनीषी काल को सर्वत्र कारण कहते हैं। उनके अनुसार काल के अंतर्गत ही प्राणी अथवा वस्तुओं की उत्पत्ति, पुष्टि एवं संहार होता है। सब के सो जाने पर भी काल ही जागता है, काल दुरतिक्रम है।[69]

यह काल ही है, जो शीघ्र न किये जाने वाले जिस किसी भी कार्य, विशेषतः फलोन्मुख कार्यों के फल को पी लेता (नष्ट कर देता) है।[70] श्रीराम का वन जाना, दैत्यराज बलि का बंधन में पड़ना, पांडवों का वन गमन, यादवों का विनाश, राजा नल का राज्य-भ्रष्ट होना, अर्जुन का नाट्याचार्य पद ग्रहण करना, रावण का विनाश आदि विचार कर मालूम पड़ता है कि मनुष्य सब कुछ कालवश सहन करता है, इस संसार में कौन किसकी रक्षा करता है।[71] बलवान् काल ने ही प्रतापी दशरथ, सागर, पृथु एवं मनु जैसे राजाओं का भी नाश कर दिया।[72] इसी प्रकार मान्धाता, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, नहुष,

---

65 ''कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि''–तदेव।

66 ''तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर''–तदेव।

67 अपरे स्वभावकारणिकां ब्रुवते –
''केन शुक्लीकृताः हंसाः, मयूराः केन चित्रिताः। स्वभावेनैव इति–सां. का. 61, गौड़पाद भाष्य

68 न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥''–भ. गी.।

69 ''कालः पचति भूतानि, कालः संहरते जगत्।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालो हि दुरतिक्रमः॥''–सां. का. 61, गौड़पाद भाष्य; चाणक्य नीति दर्पण।

70 ''यस्य यस्य हि कार्यस्य फलितस्य विशेषतः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तत्फलम्॥''–पं. तं.।

श्रीकृष्ण कहां हैं? काल ने ही इन सबको बनाया और अपने में समाविष्ट भी कर लिया। इसी प्रकार, अन्य-अन्य राजा, रमणियाँ, वन, उपवन सब काल के ही ग्रास हो गये।[72] अतः काल ही प्रधान है। प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति वा अप्राप्ति काल के ही अधीन है।[73] अतः काल ही सब का कारण है। काल के वश में ही शुभ-अशुभ फल, योनि, पदवी, जन्म आदि सभी है।

ईश्वरवादी—ईश्वर को सर्वत्र कारण मानने वाले कहते हैं कि जीव तो अज्ञ हैं और स्वयं अपने सुख-दुःख भोगने में असमर्थ हैं। इसलिये, स्वर्ग अथवा नरक में कर्मफल भोगने के लिये ईश्वर की प्रेरणा से ही जाता है—अपने वश में होता तो नरक अथवा दुःख-क्लेश को कभी स्वीकार नहीं करता।[76] श्रुतियों में भी ऐसा ही मत मिलता है। कौषीतकि ब्राह्मण में कहा गया है कि ईश्वर जिस प्राणी को इन लोकों से ऊपर उठाना चाहता है, उससे साधु (शुभ, पुण्य) कर्म करवाता है और जिसे निम्न लोकों की प्राप्ति कराना चाहता है, उससे असाधु (अशुभ, पाप) कर्म करवाता है।[77] बृहदारण्यकोपनिषद्

---

[71] "रामस्य व्रजनं, बलेर्नियमनं, पाण्डोः सुतानां वनं,
वृष्णीनां निधनं, नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम्।
नाट्याचार्यकमर्जुनस्य, पतनं संचिन्त्य लङ्केश्वरे,
सर्वं कालवशाज्जनोऽत्र सहते, कः कं परित्रायते॥"—तदेव।

[72] "क्व स दशरथः स्वर्गे भूत्वा महेन्द्रसुहृद्व्रतः।
क्व स जलनिधेर्वेलां बद्ध्वा नृपः सगरस्तथा।
क्व स करतलाज्जातो वैन्यः क्व सूर्यतनुर्मनु -
र्ननु बलवता कालेनैते प्रबोध्य निमीलिताः॥"—तदेव।

[73] "मान्धाता क्व गतस्त्रिलोकविजयी राजा, क्व सत्यव्रतः,
देवानां नृपतिर्गतः क्व नहुषः, सच्छास्त्रवान् केशवः।
मन्यन्ते सरथाः सकुञ्जरवराः शक्रासनाध्यासिनः,
कालेनैव महात्मना त्वनुकृताः कालेन निर्वासिताः॥"—तदेव।

[74] "स च नृपतिस्ते सचिवास्ताः प्रमदास्तानि काननवनानि।
स च ते च ताश्च तानि च कृतान्तदृष्टानि नष्टानि॥"—तदेव।

[75] "माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होये।"—रहीम

[76] केचिदीश्वरं कारणं ब्रुवते—
"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्ग नरकमेव वा॥"—सां. का., गौ. पा. भा.,

[77] "एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो
उन्निनीषत एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं
यमधो निनीषते"—कौ. ब्रा.।

कहता है कि वह जीव पुण्य कर्म से पुण्यात्मा और पाप कर्म से पापात्मा होता है।[78] ऋग्वेद के वाक् (देवी) सूक्त में कहा गया है–[79]"मैं जिस प्राणी को जैसा चाहती हूं उस उस को वैसा ही उग्र, ब्रह्मज्ञानी, ऋषि अथवा अत्यन्त बुद्धिमान् बना देती हूं। स्मृतियों में भी ऐसा ही मत पाया जाता है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं–ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय देश में विद्यमान रहता है और माया के द्वारा सभी प्राणियों को यन्त्रारूढ़ की भांति उनके शुभाशुभ कर्मों के फलानुसार घुमाता है।[80]

दैव-पौरुष समुच्चयवादी–ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य का मानना है कि दैव और पौरुष, स्वभाव एवं कालादि अकेले-अकेले फलोत्पत्ति में समर्थ नहीं है। ईश्वर तो सर्वत्र साधारण कारण है। अतः दैव, पौरुष, स्वभाव, कालादि परस्पर संयोग (समुच्चय) से फलोत्पत्ति में कारण बनते हैं। जैसे एक चक्र से रथ की गति संभव नहीं होती, उसी प्रकार पुरुषकार के बिना दैव सिद्ध नहीं होता।[81] मत्स्य पुराण में भी दैव, पुरुषकार और काल के संयोग से शुभाशुभ काल की प्राप्ति की बात कही गई है।[82] मिताक्षरा में कहा गया है[83] कि प्राणियों का अभ्युदय और विनिपात (अधःपतन) दैवाधीन मानकर यदि–'भाग्य में है, तो परराष्ट्रादि स्वयमेव वश में हो जायेगा और यदि नहीं है, तो पौरुष करने पर भी नहीं होगा'–ऐसा सोचकर प्रयास (उद्यम) छोड़ दिया जाये कि वह व्यर्थ है? तो कहा जाता है कि दैव तो दृष्टानिष्टलक्षणा कर्मफल प्राप्ति है। वह न केवल दैव में व्यवस्थित है, प्रत्युत् पुरुषकार में भी क्योंकि लोक में वैसा देखते हैं कि बीमारादि होने पर चिकित्सा आदि से लाभ होता है। इसी प्रकार-'पुरुषकार के अभाव में दैव ही नहीं है'–ऐसी बात भी नहीं है क्योंकि पूर्व देह में अर्पित पौरुष को ही दैव कहते हैं। अल्प उद्यम के अनन्तर महाफल की प्राप्ति हो जाना पूर्व देह के कर्म के फल का परिचायक है। इसलिये पुरुषकार के अभाव में दैव संभव नहीं? इसीलिये मन्वादि कुशल बुद्धि वाले दैवादि के संयोग (समुच्चय) में ही फल

---

78 "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन"–बृहद्. उप.।

79 "यं कामयेतं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्" –ऋ.सं., म. 10,वा. सू. 80 ऋचा

80 "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानिमायया॥"–भ. गी.।

81 "दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदेहिकम्॥ केचिद्दैवात्स्वभावाच्च (वा) कालात्पुरुषकारतः। संयोगात् केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्। एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति॥"–या. स्मृ.।

82 "दैवः पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम। त्रयमेतन्मनुष्यस्य पण्डितस्य फलाय वै॥"–मात्स्ये

83 "स्वमतमाह–दैवादीनां संयोगे समुच्चये फलं भवतीति कुशलबुद्धयो मन्वादयो मन्यन्ते"–मिताक्षरा।

की निष्पत्ति मानते हैं। स्मृति भी इस बात की पुष्टि करती है[84] कि पूर्व सृष्टि (जन्म) में किये हुये कर्मों के अनुसार ही बार-बार जन्म लेकर प्राणी उन्हीं कर्मों को (फलरूप = दैव) प्राप्त करता है–हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-क्रूर, धर्म-अधर्म, ऋत (सत्य)अनृत (असत्य) कर्मों को उनकी वासना से युक्त होकर प्राप्त करते हैं एवं उस वासना से ही पुण्य-पाप आदि पसंद करता है। श्रुति तो समस्त प्रकृति में इसी नियम का मंडन करती है। शंकराचार्य कहते हैं कि कर्म की शक्ति (संस्कार-वासना) सहित ही जगत् लीन होता है और शक्ति-मूल ही उत्पन्न होता है। इसीलिये पुनरुत्पत्ति दशा में श्रुति-स्मृति अनुसार भी दोनों (पूर्व कर्म और पुनर्जन्म में दैव के रूप की) अवस्थाओं में नाम, रूप, दृष्टि (ज्ञान), कर्म, भावादि समान ही होते हैं, जैसे ऋतुओं के परिवर्तन चक्र (आवृत्ति) में वैसा ही नाम, रूप, लिङ्गादि दर्शित होता है।[85-86]

आत्मबल संसारी दशा (Empirical stage)— काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन में भी संसारी दशा में कर्म की विचित्रता को स्वीकार किया गया है। श्रुति-स्मृति-पुराण के अनुसार ही शुभ कर्म का शुभ फल और बुरे कर्म का बुरा परिणाम माना गया है। उसी के प्रभाव से ही देव, मानव अथवा तिर्यक् योनि, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक आदि की प्राप्ति होनी अभिहित है। दूसरे शब्दों में, कर्म और उसका फलरूप दैव मान्य है। जीव माया से मोहित हुआ अपने पारमार्थिकरूप शिव को नहीं पहचानता है और शरीरादि में मिथ्याभिमान से ग्रस्त होकर अपने शुद्ध-चैतन्य अथवा संविद्रूप का अनुभव नहीं करता है।[87] यह आत्मस्वरूप का अज्ञान ही मल कहा जाता है, जो संसार के अङ्कुर (प्रस्फुटन) का कारण है।[88] इसी से जन्म-मरणरूप संसृति चक्र शुरू हो जाता है।[89] इस प्रकार, मल से चैतन्य के

---

[84] "तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे। तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते"–स्मृति

[85] "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥"–ऋ. सं.।

[86] "प्रलीयमानमपि चेदं जगच्छक्त्यवशेषमेव प्रलीयते। शक्तिमूलमेव च प्रभवति . . . . समान नामरूपतां च श्रुतिस्मृती दर्शयतः–
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः। शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥
यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये। दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥
यथाभिमानिनोऽतीतास्तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह। देवा देवैरतीतैर्हि रूपैर्नामभिरेव च॥–ब्र. सू., शां. भा.।

[87] "चैतन्यमात्मा"–शि. सू.।

[88] "मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम्"–मा. वि. तं.

[89] "अज्ञानाद्बध्यते लोकस्ततः सृष्टिश्च संहृतिः"–श्रीसर्वाचारे, शि. सू. वि.।

अन्तर्हित होने, कला (किञ्चित्कर्तृत्व), विद्या (किञ्चिज्ज्ञातृत्व) के समाश्रित होने, राग (अपूर्णआसक्ति) से रञ्जित, काल (अनित्यत्व, भूत-वर्तमान-भविष्य) से कलित होने तथा नियति (अव्यापाकत्व कार्य–कारणभाव) से नियन्त्रित होने पर शिव ही पुरुष, अणु, जीव, पशु अथवा बद्ध कहलाता है। तब वह प्रकृति (प्रधान) के संस्कार एवं त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) से समन्वित, बुद्धि-अहंकार-मन, बुद्धीन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, तन्मात्र और स्थूलभूतों से समावृत हो जाता है।[90] इस प्रकार शिवेच्छा से उनकी माया शक्ति द्वारा आत्मस्वरूप के अज्ञान से स्वरूपावरणात्मक आणव मल होता है, जिससे पार्थक्य ज्ञान प्रवाहरूप मायीय मल और शुभ (धर्म) और अशुभ (अधर्म) कर्म संस्कारात्मक कार्ममल उत्पन्न होता है जो जन्म एवं भोग (दैव) का कारण होता है।[91] कालिकाक्रम में भी कहा गया है कि अविद्या से आवृत होने से विविध द्वैतात्मक कल्पनायें करते रहने से जीव शिवादि धरणिपर्यन्त आत्मरूप ही तत्त्वों को शीघ्र पहचानता नहीं है। इसीलिये उससे शुभ-अशुभ मानसिक भाव उत्थित होते हैं, जिससे परम दुःख होता है। सारहीन (असत्य) कल्पना करने से नरकादि में तड़पता है। जैसे बांस अपनी ही आग से जलते हैं, वैसे ही जीव अपने दोषों से तद्भोग (फल, दैव) रूप कष्ट पाते हैं।[92] (मायामय) विचारों के कारण अविद्या का फल पाते हैं।[93] मायामय ही शरीरों को पाकर अपनी अभिलाषाओं से क्लेशों के पात्र बनते हैं। अभिलाषा से ही संवाह्य (कर्मात्मरूप पशु) की बहिर्गति (एक योनि-अथवा रूप से दूसरी में परिवर्तन) होती है।[94] यह अभिलाषा (feeling of want) ही मल (अज्ञान) है।[95]

---

[90] ''मलप्रध्वस्तचैतन्यं कलाविद्यासमाश्रितम्। रागेण रञ्जितात्मानं कालेन कलितं तथा॥ नियत्या यमितं भूयः पुंभावेनोपबृंहितम्। प्रधानाशयसम्पन्नं गुणत्रयसमन्वितम्। बुद्धितत्त्वसमासीनमहङ्कार-समावृतम्। मनसा बुद्धिकर्माक्षैस्तन्मात्रैः स्थूलभूतकैः''–स्वच्छ. तं.।

[91] (क) ''त्रिविधमलस्वरूपम्–अपूर्णमन्यताभिन्नवेद्याप्रथाशुभाशुभवासनात्मकं''–शि. सू. वि.।

(ख) ''धर्माधर्मात्मकं कर्म सुखदुःखादिलक्षणम्''–मा. वि. तं.।

(ग) ''भिन्नवेद्यप्रथात्रैव मायाख्यं जन्मभोगदम् कर्तर्यबोधे कार्मं च मायाशक्त्यैव तत्त्रयम्''–ई. प्र. का।

[92] ''यदविद्यावृततया विकल्पविधियोगतः। शिवादीन्नैव झटिति समुद्भावयेतखिलान्॥ ततः शुभाशुभा भावा लक्ष्यन्ते तद्वशत्वतः। अशुभेभ्यश्च भावेभ्यः परं दुःखं प्रजायते॥ अतथ्यां कल्पनां कृत्वा पच्यन्ते नरकादिषु। स्वोत्थैर्दोषैश्च दह्यन्ते वेणवो वह्निना यथा॥ मायामयैः सदा भावैरविद्यां परिभुञ्जते। मायामयीं तनुं यान्ति ते जनाः क्लेशभाजनम्॥''–कालिकाक्रमे, शि. सू. वि.।

[93] ''मोहप्रतिसंहतस्तु कर्मात्मा''–शि. सू.।

[94] ''अभिलाषाबहिर्गतिः संवाह्यस्य''–तदेव।

[95] ''अभिलाषो मलोऽत्र तु''–स्वच्छ. तं.

तन्त्रालोक में महान् शैवाचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि भगवती परा संवित् द्वारा ही विश्रान्तिरूप संहृति की दशा में कार्यरूप भावसमूह को विलापित करने के समनन्तर भी कुछ प्रतिनियत रूप अर्थात् भेदावभासात्मा घनीभूत रूप में अवस्थित हो जाता है, जो संस्काररूप में वर्तमान होकर 'शंका' के निमित्तरूप से अवस्थित हो जाता है। उसी के कारण विचित्र आचार प्रदर्शक अनन्त शास्त्रों में कार्यअकार्य-विभाग के निश्चय को अप्राप्त हुआ प्रमाता-'अज्ञान से आच्छन्न होकर अधर्म को धर्म समझ लेता है– इस दृष्टि से जो ही जैसे हृदय में उदित होता है, वह ही वैसे उसका फलित होता है अर्थात् जैसा कर्म (शुभाशुभ) करता है, वैसा ही उसका भाग्य बनता है। इस प्रकार वह ही यह शङ्कानिमित्त कार्याकार्य लक्षण प्रतिनियत भाव में विद्यमान संस्कार प्रबुद्ध होकर शुभाशुभरूपी फलसम्पदा को उत्पन्न करता है, जिससे यह लोक स्वर्ग-नरकादि का अधिकारी होकर सुख-दुःखादि भोक्ता बनता है।[96] ईश्वरेच्छा से ही भट्टारक अनन्त (अघोरेश) जीवों के शुभाशुभ कर्मों के फल-भोग के लिये अशुद्ध अध्वा (मायीय तत्त्वों) की रचना माया से करते हैं।[97] वास्तव में कर्तृत्व सर्वत्र परमेश्वर का ही होता है, परंतु जीव शरीरादि में अभिमान और स्वरूप के अज्ञान के कारण सीमित कर्तृत्व का अहंकार करता है, जिसकी वासना (संस्कार) के फलस्वरूप शुभाशुभ फल भोगता अथवा नाना योनियों में गमन करता है, सुख-दुःख भोगता है। यह हीन दशा परिमित कर्तृत्व अभिमान के कारण ही होती है, जबकि हृदय से सर्वकर्तृत्व की अवधारणा करनी चाहिये। इस से यही निष्कर्ष निकलता है कि काश्मीर अद्वैत शैव मत में संसारी अवस्था में कर्म (पौरुष) और तदनुरूप फल (दैव) को स्वीकृत किया गया है।[98]

---

96 ''विलापितेऽपि भावौघे कञ्चिद्भावं तदैव सा। आश्यानमेद्यं एवास्ते शङ्का संस्काररूपकः। शुभाशुभतया सोऽयं सोष्यते फलसम्पदम्–तं. आ.।

.....यद्(शङ्का)वशादेव विचित्राचारप्रदर्शकेषु अनन्तेषु शास्त्रेषु कार्याकार्यविभागनिश्चयमलभमानस्य प्रमातुः

''अधर्मं धर्ममिति या बुद्ध्यते तमसावृता'–

इत्यादिदृशा यदेव यथा हृदये प्ररोहति तदेव तस्य तथा फलेत्–इति स एवायं शङ्कानिमित्तं कार्याकार्यलक्षणप्रतिनियतभावाहितः संस्कारः प्रबुद्धः सन् शुभाशुभरूपां फलसम्पदं जनयिष्यते, येनायं लोकः स्वर्निरयादिपात्रतया सुखदःखादिभोक्तृतामियात्''–तं. आ. वि.।

97 ''अशुद्धं पुनरध्वानमनन्तापरनामाघोरेशः सृजति ईश्वरेच्छावशेन प्रक्षुब्धभोगलोलिकानामणूनां भोगसिद्ध्यर्थम्''–तं. सा., पृ.।

98 ''तस्मात् वस्तुत 'ईश्वर एव सर्वत्र कर्ता, अहं च स एव' इति न परिमिते कर्ता, अपितु सर्वत्र कर्ता,–इति एतावति सर्वथा हृदयेन अवधातव्यम्, इति स्थितम्'' – ई. प्र. वि.।

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

आविर्भावदिवस	महासमाधिदिवस
9-5-1907	27-9-1991

(श्री तेजकृषण कौल (मल्ला) के सौजन्य से)

अध्यात्म दशा (Spiritual Stage)—यह दर्शन अध्यात्म प्रधान है और जीवन के सर्वतोमुखी विकास के लिये आत्मज्ञान पर बल देता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, जन्म-मृत्यु इत्यादि सभी द्वन्द्व संसारी दशा के परिमित प्रमाता (मायाधीन स्थूलादि शरीराभिमानी जीव) से संबंधित हैं। वास्तव में तो वह शिव है और अज्ञान के कारण परिच्छिन्नता का अनुभव करता है। यही उसके सभी प्रकार के क्लेशों का बीज है। अतः स्वस्वरूप की आणव-मायीय-कार्म मलों के आवरण के कारण असमर्थता, फलतः विषयों की प्राप्ति की अभिलाषा, जिससे वह क्षोभ (द्वैत चिन्तन की छटपटाहट) में रहता है, शांत होने पर परमपद के ऐश्वर्य का अनुभव करता है अर्थात् दैवादि पर निर्भरता की अपेक्षा अपने शुद्ध चैतन्य संविद्रूप का अनुभव करना चाहिये, क्योंकि वही दैवादि का भी आधार है।[99] उसके प्रकाश से ही सब का प्रकाश होता है, अन्यथा किसी की भी उससे पृथक् सत्ता संभव नहीं है।[100] देश, काल, आकारादि भी उसी से सत्तावान् होते हैं।[101] वह स्वयंभू, ज्योतिस्वरूप, स्वतः सिद्ध है।[102] प्रमाण भी उसी पर आश्रित होने से उसको प्रमाणित नहीं कर सकता। उसका पार पाना अपने सिर की छाया को पांव से लांघने के समान असंभव है।[103] वह परामृत रस है और इस अनुभव से च्युति ही प्रत्यय (मन-बुद्धि-अहंकार-इन्द्रियजन्य ज्ञान, विकल्प) के उदय का मूल है। पुनः इससे वह अस्वतंत्र (असमर्थ, हीनताग्रस्त) हो जाता है और तन्मात्र गोचर अर्थात् शब्दादि बाह्य विषयों की अनुभूति पर्यन्त ही सीमित होकर शुभ-अशुभ कर्म एवं उनके संस्कारवश आवागमन भोग भोगता है।[104] अतः जब

---

[99] "निजाशुद्ध्यासमर्थस्य कर्त्तव्येष्वभिलाषिणः। यदा क्षोभः प्रलीयेत् तदा स्यात्परमं पदम्॥" —स्प. का.।

[100] "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" – कठ. उप.।

[101] "इह अचेतितस्य कस्यापि सत्त्वाभावात्, चितिक्रियासर्वसामान्यरूपा इति .... चितोदेशकालाकारैः चिद्वयतिरेकात् अचेत्यमानत्वेन – शि. सू. वि., 1/1 असद्भिः चेत्यमानत्वेन तु चिदात्मभिः भेदस्य आधातुम् अशक्यत्वात्

[102] (क) "स्वयम्भूर्भगवान्देवो जन्मसंस्कारवर्जितः।
निर्विकल्पं परं धाम अनादिनिधनं शिवम्॥
प्रत्यक्षं सर्वजन्तूनां न च पश्यति मोहितः।" – श्रीमल्लक्ष्मीकौलार्णवे
(ख) "यस्या निरुपाधिज्योतिरूपायाः शिवसंज्ञया। व्यपदेशः परां तां त्वामम्बां नित्यमुपास्महे॥" —शि. दृ. वृ.।

[103] "अभिनवार्थप्रकाशनरूपं न प्रमाणवराकमुपयुक्तम् उपपन्नं वा। तदुक्तं त्रिकसारे – 'स्वपदा स्वशिरच्छायां यद्वल्लङ्घितुमीहते। पादोद्देशे शिरो न स्यात्तथेयं बैन्दवी कला॥'"–प्र. हृ. टी.,सू.,।

[104] "परामृतरसापायस्तस्य सः प्रत्ययोद्भवः। तेनास्वतन्त्रामेति सः च तन्मात्रगोचरः॥"– स्प. का.।

कर्म एवं दैव (कर्मफल) के चक्र से बचने के लिये आत्म बल लाभ परमावश्यक है। राजानक क्षेमराज "आत्मबल" चिति शक्ति के देह, प्राणादि कोशों को दबाकर अपने उभार से अपने स्वरूप के उन्मेष को कहते हैं।[105] इस आत्मबल की प्राप्ति से विश्वात्मात् अर्थात् अपनी ही शक्तियों का स्फार अनुभूत होता है, जिससे जगदानन्द, आत्ममहेश्वर का अनुभव होता है।[106] सिद्ध वसुगुप्त के अनुसार यह आत्मबल स्पर्श से ही पुरुष (जीव, पशु) शिवतुल्य हो जाता है।[107] श्रुति भी इसी अवस्था को दृष्टिकोण में रखकर कहती है कि–'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है, उस (ब्रह्म, आत्मा) को जान लेने से सब कुछ जाना हुआ हो जाता है।[108]' जैसे केवल भाग्य के भरोसे बैठने अथवा उद्यम (पौरुष) में कोई त्रुटि रहने से विपरीत फल भी हो सकता है, इस आत्मबल की अनुभूति के मार्ग में प्रसरण से प्रत्यवाय नहीं होता और न ही प्रारंभ का नाश ही होता है, प्रत्युत् थोड़ा-सा भी अनुसरण करने से संसार के महान् क्लेशों से त्राण हो सकता है।[109] भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह ब्राह्मी स्थिति कहलाती है और इसको प्राप्त करके जीव पुनः मोहित नहीं होता अर्थात् संसार-चक्र में मायावश नहीं पड़ता। मृत्यु की दशा में भी आत्मबल का अनुभव करने से ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है।[110] महान् शैवाचार्य उत्पलदेव इस 'आत्मबल' लाभ के मार्ग को 'शाङ्कर मार्ग' कहते हैं, जिसके अनुसरण से सभी प्रकार के

---

105 "चितिरैव देहप्राणाद्याच्छादननिमज्जनेन स्वरूपम् उन्मग्नत्वेन स्फारयन्ती बलम्–प्र. हृ. टी., यथोक्तं – "तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः। प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्॥ तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्तरूपाः निरञ्जनाः। सहाराधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिणः॥"–स्प. का.।

तदुक्तं पूर्वगुरुभिः स्वभाषामयेषु क्रमसूत्रेषु–'यथा वह्निरुद्बोधितो दाह्यं दहति, तथा विषयपाशान् भक्षयेत्'

106 "बललाभे विश्वमात्मसात्करोति"–प्र. हृ., सू.।

107 "स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्"–शि. सू.।

यथा श्रीमङ्गलातन्त्रे – 'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नम्"

108 "अन्तः स्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तगोचरा। यावस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः॥ तद्वपुस्तत्त्वतो ज्ञेयं विमलं विश्वपूरणम्।"–वि. भै.।

107 "नहीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते। अपित्वात्मवलस्पर्शात्पुरुषस्तत्समो भवेत्॥" – स्प. का., 1/8 एवं "शिवतुल्यो जायते"–शि. सू.।

108 "ब्रह्मविद् ब्रह्मेव भवति"–

108 "तस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति"

109 "नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥"–भ.गी.।

110 "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥"–भ. मी.।

दुःख सुखरूप, विष भी अमृत स्वरूप अर्थात् भोग में भी मोक्ष, विकल्पों का प्रसररूप संसार, अतएव संसरण, बंधन का कारण भी मोक्षरूप हो जाता है।[111] अतएव आत्म-साक्षात्कार का ही प्रयत्न करना, जिसका ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य ने भी विदुषी मैत्रेयी को उपदेश दिया है।[112] माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त का भी मानना है कि आत्म-महेश्वर का बल लाभ ही परमार्थ तत्त्व है, क्योंकि स्वतंत्र चेतन महेश्वर (परमेश्वर) ही सभी रूपों एवं क्रियाओं में भासित होता है, अतः उसके अतिरिक्त कोई क्रिया अथवा फलादि नहीं है।[113]

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00
Price Per Copy : Rs.25.00
Overseas Subscription : US$25.00

All correspondence & subsciption must be sent to the Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Phone : 6943307

---

111 ''दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः॥''–शि. स्तो.।

112 ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यो – बृहद्. उप., 2/4/5

113 ''तस्माच्चेतनः स्वतन्त्रः परमेश्वर एव तथा तथा भाति, इति न तद्व्यतिरिक्तं क्रियातत्फलादिकमिति सिद्धान्तः''–गी. अ. सं., 5/14

कश्मीर शैवदर्शन में तत्त्वों का निरूपण

- डॉ. वीना कुमारी

यूँ तो सभी भारतीय दर्शनों में तत्त्वों का विशेष महत्त्व हैं, किन्तु बाकी दर्शनों में अधिक से अधिक 25 तत्त्व माने गये हैं, जबकि कश्मीर शैवदर्शन में 36 तत्त्व माने गये हैं। ये तत्त्व परमतत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र हैं। इन तत्त्वों का सम्बन्ध परमतत्त्व से सदैव बना रहता है। ये न तो शिव से अलग हैं और न एक दूसरे से, प्रत्युत् प्रत्येक तत्त्व में सभी तत्त्व उपस्थित हैं। जिस तरह उच्चतर तत्त्व निम्नतर तत्त्वों को अपने में सन्निहित किये रहते हैं, उसी तरह निम्नतर तत्त्व भी अपने सभी उच्चतर तत्त्वों को समाहित किये रहते हैं। 'विज्ञान भैरव' में भी कहा गया है कि पूर्व तत्त्व उत्तर तत्त्वों में सर्वत्र व्यापक भाव से अवस्थित रहते हैं, जैसे घट इत्यादि में मिट्टी रहती है।[1] ये तत्त्व सांख्य की तरह विषयात्मक या मनोवैज्ञानिक नहीं हैं। शैव दार्शनिक मानते हैं कि ये तत्त्व सत्य हैं और यौगिक अनुभव द्वारा जाने जा सकते हैं।

(1) **शिवतत्त्व** : परमशिव की दो अवस्थितियाँ हैं – विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय। परमशिव का सर्जनात्मक विश्वमय रूप ही शिवतत्त्व कहा जाता है। परमशिव जब अपने स्वरूप को ही अखिल विश्व रूप में अवभासित करने की इच्छा करता है तब उसकी विश्वोन्मीलन की उस आद्या अवस्था को ही शिवतत्त्व कहते हैं। परमशिव का प्रथम स्पन्द ही शिवतत्त्व कहलाता है।[2] तन्त्रसार के अनुसार पंचशक्ति स्वभाव परमशिव में चित् शक्ति का प्राधान्य होने पर वह शिवतत्त्व कहलाता है।[3] इसमें अनुभव का प्रत्यय 'अहम्' होता है।

(2) **शक्ति तत्त्व** : वास्तव में शिव और शक्ति में कोई भिन्नता नहीं है, दोनों में भिन्नता मात्र व्यवहारिक स्तर पर है। प्रकाशात्मा शिव का विमर्श रूप ही शक्ति तत्त्व है। जब परमशिव के हृदय में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न होती है, तब शिव और शक्ति तत्त्व अभिव्यक्त होते हैं। तन्त्रालोक में कहा गया कि शिव की बाह्योन्मुखरूप क्रिया ही शक्ति तत्त्व है।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि शिव और शक्ति में कोई भिन्नता नहीं है। शिवतत्त्व में

---

[1] "क्रमेऽपि च पूर्व-पूर्व उत्तरत्र व्यापकतया स्थितं मृदिव घटादौ"। – वि. भै. वि., पृ. 47

[2] "यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्। पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः ॥ – ष. त्रि. त. सं., पृ. 1, श्लो. 1

[3] "चित्प्रधान्ये शिवतत्त्वम्"। – तं. सा., पृ. 74

[4] "तस्य बहिरौन्मुख्येन व्यापारः शक्तितत्त्वम् "। – तं., लो., भा. 6, पृ. 50-51

जो केवल 'अहम्' का आभास होता है, शक्तितत्त्व में वही अनुभव 'अहमस्मि' रूप ग्रहण कर लेता है क्योंकि शक्ति के कारण ही शिव को अपना बोध होता है।

(3) **सदाशिव तत्त्व** : परमशिव में जब इच्छा का प्राधान्य होता है तब वही परमेश्वर सदाशिव तत्त्व कहलाता है। इस सदाशिव तत्त्व के अधिष्ठाता भगवान् शिव होते हैं। उनके उन्मेष से सृष्टि होती है और निमेष से लय होता है। इसी उन्मेष के कारण सदाशिव तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। सोमानन्द के अनुसार इच्छा का प्राधान्य शक्ति तत्त्व में होता है; सदाशिवतत्त्व में परमेश्वर की ज्ञानशक्ति का प्राधान्य रहता है।[5] इस अनुभव का स्वरूप 'अहम्-इदम्' होता है। अहम् तत्त्व का प्राधान्य होता है और इदम् तत्त्व अस्फुट रहता है। सदाशिव तत्त्व सृष्टि के विकास में प्रथम तत्त्व है।[6]

(4) **ईश्वर तत्त्व** : जब परमशिव में ज्ञान शक्ति का प्राधान्य होता है, यही ईश्वर तत्त्व की अवस्था कही जाती है।[7] यहाँ सृष्टि रचना का विचार स्पष्ट हो जाता है। शिव, शक्ति और सदाशिव तत्त्व परमशिव के आन्तरिक सम्बन्ध की अवस्था है, जबकि ईश्वर तत्त्व उनके बाह्यीकरण की अवस्था है। इस तत्त्व के प्रमाता 'मन्त्रेश' कहलाते हैं। इस अवस्था का अनुभव 'इदम्-अहम् है। इस स्तर में रहने वाले प्राणी मन्त्रेश्वर कहलाते हैं। यह विश्व के भेदाभेदात्मक अनुभव की अवस्था होती है।

(5) **शुद्धविद्या** : इस अवस्था में आत्मा अपने आपको शुद्ध संवित्-स्वरूप समझता रहता है। वह अपने स्वरूप के विषय में अनभिज्ञ नहीं होता परन्तु प्रमेय तत्त्वों को अन्य प्राणियों से पृथक् समझता है। यहाँ माया का प्रभाव अंशतः होता है किन्तु आत्मा पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। इस अवस्था में अनुभव के 'अहम्' और 'इदम्' दोनों रूपों में ऐक्य की अनुभूति होती है। इस अवस्था में क्रिया शक्ति की प्रधानता होती है।[8] वास्तव में यह भेदाभेदमयी दशा होती है। जहाँ 'अहम्' और 'इदम्' में पूर्णता अभेद भी होता है परन्तु इनमें भेद भी किया जा सकता है। इस अवस्था के प्राणी विद्येश्वर कहलाते हैं। जिस प्रकार परमशिव का बहिः औन्मुख्य शक्तितत्त्व कहलाता है, उसी प्रकार सदाशिव और ईश्वर का बाह्य औन्मुख्य शुद्धविद्या तत्त्व कहलाता है।[9]

---

[5] "बिभर्त्ति रूपमिच्छातः कदाचिज्ज्ञानशक्तिः। सदाशिवत्वमुद्रेकात् कदाचिदैश्वरी स्थितिम्। – शि. दृ.।

[6] "सृष्टिक्रमोपदेशादौ प्रथममुचितं तत्सादाख्यं तत्त्वम्"। – ई. प्र. वि. भा. 2, पृ.।

[7] "ज्ञानशक्ति प्राधान्ये ईश्वर तत्त्वम्। – तं. सा., आह. 8, पृ.।

[8] "क्रियाशक्ति प्राधान्ये विद्या तत्त्वम्" । – तं. सा., भा. 8, पृ.।

[9] "यद्यपि परमशिवस्यैवेवमेकघनमैश्वर्यं तथापि तस्य यथा बाहिरौन्मुख्येन व्यापारः शक्ति तत्त्वं तथा सदाशिवेश्वरयोरपि विद्या तत्त्वम्"। – तं. टी. भ. 6, पृ.।

(6) माया : माया परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति है, जो भेद दशा का अवभासन करने के कारण माया शक्ति कहलाती है।[10] इसे परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका इच्छाशक्ति भी कहा जाता है[11], जो भट्टारक शिव से अभिन्न रहकर भेद-जगत् का अवभासन करती है। मायातत्त्व की सृष्टि का मूल कारण परमशिव की इच्छा ही है। यह एक वस्तु-भूत तत्त्व है जो परमेश्वर के स्वरूप के ऊपर पर्दा डालकर उसे छिपा देती है। इस प्रकार अभेदस्वरूप शिव में भेद का स्फुट अवभास इस माया के द्वारा उत्पन्न कर दिया जाता है। भेद दृष्टिमयी माया के प्रभाव से इस स्तर पर उतरा हुआ शिव अपने प्रमातृ अंश 'अहम्' को अपने प्रमेय अंश 'इदम्' से सर्वथा भिन्न समझने लगता है। इस अवस्था में उसकी अभेद दृष्टि लुप्त हो जाती है जिसके फलस्वरूप भेद दृष्टि से देखता हुआ शुद्ध 'अहं' रूपी अपनी संवित् स्वरूपता को भूल जाता है और अपने आपको संकुचित संवित् के रूप में समझने लगता है एवं अपने प्रमेय अंश 'इदम्' को अपने से पृथक् समझता है।

शिव से लेकर शुद्धविद्या पर्यन्त शुद्ध-अध्वा के तत्त्वों का स्रष्टा स्वयं परमशिव होते हैं किन्तु माया से लेकर अशुद्ध सृष्टि के स्रष्टा भगवान् अनन्तनाथ होते हैं। भगवान् अनन्तनाथ माया में क्षोभ उत्पन्न कर उसको विस्तृत कर पाँच तत्त्वों के रूप में बना देते हैं। ये तत्त्व माया के कञ्चुक कहलाते हैं, जो क्रमशः कला, विद्या, राग, काल और नियति नामों से जाने जाते हैं।

(7) कला : जिस समय माया से मितात्मा का पूर्ण-प्रकाशस्वरूप आवरणित हो जाता है, उस समय उसकी क्रियाशक्ति भी संकुचित हो जाती है और उसे अपने में कुछ ही कर सकने के 'परिमितकर्तृत्व' का अनुभव होता है।[12] अतः परमेश्वर की सर्वकर्तृत्वसंकोचिनी शक्ति का नाम कला है।

(8) विद्या : इस अवस्था में परमेश्वर का सर्वज्ञत्व संकुचित होकर अल्पज्ञत्व में परिवर्तित हो जाता है। इस स्थिति में जीव कुछ ही जान सकता है। अतः प्रमेयों को अपने से सर्वथा भिन्न समझता है।

(9) राग : राग तत्त्व पूर्णत्व को परिमित करके पुरुष में इच्छा या कामना का उदय करता है। इसके कारण ही प्राणी भोगों में आसक्त होते हैं, और उनके मन में भोग के

---

10 "परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्यं तदेवाव्यतिरेकिणी अपूर्णता-प्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिरुच्यते"॥ –तं. आ., टी. भा. 6, पृ.।

11 "माया स्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः"। –तं. आ. वि., भा. 3, पृ.।

12 "तत्सर्वकर्तृता सा संकुचित कतिपयार्थमात्रपरा।
किंचित्कर्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते कला नाम"॥ – षट्., त्रिं. त. स., श्लो.।

साधन इन्द्रिय आदि के स्थायित्व की कामना सदा बनी रहती है। यही रागतत्त्व मितात्मा को भेदगत भोगों में अनुरञ्जित करता है।[13]

(10) काल : परमेश्वर के नित्यत्व का संकुचित होकर भूत, वर्तमान और भविष्य में परिछिन्न हो जाना 'काल-तत्त्व' कहलाता है। इसी तत्त्व के कारण जीव भूत, वर्तमान और भविष्य की क्रमरूपता में फंस जाता है। माया के प्रभाव से जब काल शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, तब मितप्रमाता पहले अपनी देह रूप आत्मा में इस प्रकार क्रम रूपता का अनुभव करने वाला लगता है कि 'मैं कृश था' 'मैं स्थूल होऊँगा आदि नाना प्रकार की कल्पनाएँ कालतत्त्व के द्वारा ही हुआ करती हैं।

(11) नियति : विद्या और कला का नियमन राग कहलाता है और राग का यह नियमन नियति कहलाता है। नियति के नियमों के अनुसार ही जीव में वस्तु विशेष के प्रति राग का उदय होता है। वास्तव में यह नियति ही सबकी नियामिका है। इसी के कारण प्रत्येक प्राणी अपने पूर्व कर्मों के फल को भोगने के लिए बाध्य बना रहता है। वास्तव के नियति तत्त्व परम स्वातन्त्र्य एवं व्यापकत्व को सीमित कर एक निश्चित नियमितता का प्रचार करता हे।

(12) पुरुष तत्त्व : वास्तव में पुरुष तत्त्व शिव ही है, किन्तु माया एवं उसके पञ्च कञ्चुकों के प्रभाव से सीमित होकर विषयी का रूप ग्रहण करने से संसारी बन जाता है। इस अवस्था में आत्मा सीमित हो जाता है और अपने मूल स्वरूप को भूल जाता है। उसकी चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ सीमित होकर कला, विद्या, राग, काल, नियति का रूप धारण कर लेती हैं। जब तक उसे शिव भाव के स्वातन्त्र्य का बोध नहीं होता तब तक वह अनेकानेक योनियों में संचरण करता हुआ अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख आदि को भोगता रहता है।[14] आत्मस्वभाव की पूर्णता की अभिव्यक्ति हो जाने पर वह मुक्त हो जाता है।

(13) प्रकृति : यह प्रकृति शिव की शान्ता शक्ति है और सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्था है जोकि शिव की ही ज्ञान, इच्छा और क्रिया नामक त्रिविध शक्तियों के स्थूल रूप हैं। अतः जो तत्त्व माया प्रमाता को 'इदम्' के रूप में भांसित करता है, उस प्रमेयतत्त्व का नाम प्रकृति है।

(14) बुद्धितत्त्व : तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है। जब प्रकृति

---

[13] "रागोऽपि रञ्जयत्येनं स्वभोगेष्वशुचिष्वपि"। – मा. वि. तं., 128

[14] "परिमितात्मा स स्वात्मैश्वर्यमपि प्रत्यभिज्ञातुमपटुः संचरति विचित्रयोनिषु"। – ष. त्रि. त. सं., वि., पृ।

में क्षोभ उत्पन्न होता है तो सबसे पहले सत्त्वगुणप्रधान बुद्धि या महत् तत्त्व के रूप में प्रकट होती है। बुद्धि तत्त्व एक स्वच्छ एवं जड़ तत्त्व होता है, जिसके कारण यह अगली सृष्टि में सन्निहित वस्तुओं के प्रतिबिम्ब को धारण कर सकता है।

(15) अहंकार : जीव का यह अभिमान कि 'यह मेरा है', यह मैं हूँ, 'मैं करता हूँ', 'यह मेरा नहीं है', इस प्रकार का संकल्प ही 'अहंकार' तत्त्व कहलाता है। यह भी 'अहम्' ही है, परन्तु 'पूर्ण अहम्' स्वाभाविक है, और बुद्धि का विकास यह 'अहम्' कृत्रिम है। यह रजोगुणप्रधान माना गया है।

(16) मन : यह अहंकार का परिणाम है और मनुष्य के संकल्प-विकल्प का कारण है। जीव की मननशक्ति का नाम ही मन है। यह मन आन्तरविषयों का ज्ञान स्वतन्त्र रूप से तथा बाह्य विषयों का ज्ञान इन्द्रियों के सहयोग से करता है।

(17-21) ज्ञानेन्द्रियाँ : प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है। इस प्रकार इसके समस्त विकास त्रिगुणात्मक हैं। अतः अहंकार भी त्रिगुणात्मक है। इस अहंकार के सत्त्व अंश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ पुरुष को भिन्न - भिन्न प्रकार की क्षमतायें हैं जो उसके भिन्न-भिन्न व्यवहारों की साधन बनती हैं।

I. श्रोत्र पुरुष के सुनने की क्षमता को कहते हैं।

II. शीत, उष्ण, नर्म, कठोर आदि स्पर्शों को जानने की पुरुष की क्षमता को त्वक् या त्वचा कहते हैं।

III. रूप, वर्ण, आकार आदि जानने की पुरुष की क्षमता को चक्षु कहते हैं।

IV. खट्टा, मीठा, नमकीन आदि स्वाद जानने का साधन रसना है।

V. गन्ध को जानने वाले पुरुष के ज्ञान को घ्राण-इन्द्रिय कहते हैं।

(22-26) कर्मेन्द्रियाँ : अहंकार के रजस्भाग से पाँच कर्मेन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं। इन कर्मेन्द्रियों के सहारे ही पुरुष किसी कार्य में समर्थ होता है।

I. वाक् उसके बोलने का साधन है।

II. पाणि-इन्द्रिय उसके ग्रहण करने की क्रिया का साधन है।

III. गमन करने, आने-जाने अथवा चलने-फिरने की क्रियाओं का साधन पादेन्द्रिय कहा जाता है।

IV. मलत्याग की क्रिया का साधन इन्द्रिय पायु कहलाती है।

V. विषय आनन्द को अभिव्यक्त करने की क्रिया का साधन इन्द्रिय उपस्थ

कहलाती है।

(27-31) पञ्च तन्मात्राएँ : अहंकार के तामस् अंश से पाँच सूक्ष्म विषयों की अभिव्यक्ति होती है। ये विषय अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, जिन्हें तन्मात्राएँ कहते हैं। इनके नाम शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। ये भी द्रव्य हैं किन्तु सामान्य जन के अनुभव से परे हैं।

(32-36) पञ्च महाभूत : पंचतन्मात्राओं के विकसित स्थूल रूप ही आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पंचमहाभूत हैं। आकाश का गुण शब्द है। वायु स्पर्श गुण प्रधान है, अग्नि रूप प्रधान, जल रस प्रधान और पृथ्वी गन्ध प्रधान हैं।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कश्मीर शैवदर्शन के अनुसार ये तत्त्व प्रकृति का विकास होते हुए भी अन्ततः परमशिव की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इस दर्शन के अनुसार ये सभी तत्त्व परमशिव की विभिन्न अवस्थाओं के विभिन्न रूप ही हैं। इनका अपना पृथक् कोई अस्तित्त्व नहीं होता है।

गौरी स्तुतिः

भाषानुवादक
स्वर्गीय नाथराम शास्त्री
(संस्कृत भाषा के महान विद्वान् तथा
कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पंडित थे)
कश्मीरी पद्यांतर
(श्री दामोदर नेहरू)

लीलारब्ध - स्थापित लुप्ताखिललोकां लोकातीतैर् योगिभिर् अंतर्-हृदि मृग्याम्।
बालादित्य - श्रेणि समान - द्युति पुजां, गौरीं अंबां अंबुरुहाक्षीं अहं ईडे॥1॥

लीला से आरब्धं - उत्पन्न किया है **स्थापित** - रक्षा की है लुप्त-नाश किया है **अखिल लोकां** - सब लोक को, सब जगत को, जिसने उसको; **लोक-अतीतैः**-(लोकों से अतीत हुए हैं) लोकोत्तर दृष्टिवाले, **योगिभिः**-योगियोंसे **अन्तर्हृदि**- हृदय के बीच, **मृग्याम्**-ढूंढी जाती है जो उस को **बाल**-छोटे अर्थात् प्रभात के **आदित्य**- सूर्य के, **श्रेणि** - समूह के **समान द्युति** - ज्योती की **पुंजां** - राशी जो है उस **अम्बां** - मां को **अंबुरुहाक्षीम्** - कमल

के से नेत्र हैं जिस के उसका अहंईडे--मैं स्तुति नमस्कार करता हूं।
मैं उस कमल से नेत्रों वाली जगदम्बा पार्वती जी को प्रणाम और स्तुति करता हूं जो लीला से अनायास ही भूः भुवः स्वः आदि लोकों को उत्पन्न करती है रक्षा करती है और अपने समय पर लय भी करती है और जिसको लोकोत्तर दृष्टिवाले योगी अपने हृदयों में ही खोज निकालने का यत्न करते हैं और जिसका तेज अनंत प्रभात सूर्यों के अति-मनोहर प्रकाश के समान है॥

लीलायि किन्य यम्य लोक उपदअव्यन ललबिथ सारी लय करान
लोकन ह्युर गमत्य योगीजन यिमिस हृदयस मंज छारान
बाल सूर्यन हंजन तंदलन सम यस ज्योतीहन्द्य लअद्य आसान
पंपोश फुलिमत्य जन नेत्र यस तस माजि गौरी छुस व नमान॥

आशा-पाश-क्लेश-विनाशं विदधानां पादाम्भोज-ध्यान पराणां पुरुषाणां।
ईशीं ईशार्धागहरां तां तनुमध्यां गौरी.॥2॥

पाद अंभोज - चरण कमलों के, ध्यान पराणां पुरुषाणाम् - ध्यान पर लगे हूए पुरुषों के आशापाश क्लेश बिनाशं-आशा की फांसी के क्लेश या कष्ट का नाश, विदधानाम् - करने वाली जो है उस को; ईशीम्-सब सामर्थ्यों वाली ईश्वरी को, ईश अर्ध अङ्ग हरां - ईश्वर के अर्ध शरीर को लेने वाली जो है उस को, जो ईश्वर के साथ एकसाथ वा समान है। तां तनुमध्याम्-उस पतली कमर वाली को (पतली कमर वाली से प्रयोजन मध्य नाड़ी या चित् शक्ति से है जो अन्दर से हर एक शरीर में और बाहिर से सब के मध्य में रहती है)

चरण कमलों के ध्यान पर लगे हुए पुरुषों की नाना प्रकार की आशाओं की फांसी के कष्ट को मिटाने वाली और सब सामर्थ्यों वाली ईश्वरी जो परमेश्वर की अर्धाङ्गिणी है और जो प्रति जीव की मध्य नाड़ी में परम सूक्ष्म रूप से तथा बाह्य से सारे विश्व में विराजमान है, उस जगत माता को मैं प्रणाम करता हूं

पंपोषि पादन हंदिस घ्यानस लग्यमत्य यिम रत्य जन आसान
तीहुंद्यन आशापाशन हुंद्यन क्लेशन हुंदयस खुर कासान
(आशा तृष्णा दुःख दद्यि अनिघटय खुर्य नाव सारिय छक कासान)
जाव्युल मध्य यस राजऋनि माजि सानि स्वामियस अर्धभाग यसु आसान
(सूक्ष्म खुत सूक्ष्म मध्यधामशक्ति यस ईश्वरस सम आसान)॥ पम्मोश फुल्य.

प्रत्याहार - ध्यान - समाधि - स्थिति - भाजां नित्यं चित्ते निर्वृति - काष्टां कलयन्तीम्।

सत्यज्ञानांनदमयीं तां तडित् आभां गौरीमम्बां॥3॥
प्रत्याहार - इद्रियों को विषयों से हटा कर लाना, ध्यान मन को एकाग्र करना समाधि - माता के चरणों में मग्न होना, स्थिति – इन नियमों के, भाजाम् - सेवन करने वालों को नित्यं - सदा चित्ते - मन में निर्वृति काष्टाम्-मोक्ष सुख की परादशा को, कलयन्तीम् - बनाने वाली जो है उस को ; सत्य - ज्ञान - आनंद - मयीं-सत् चित् आनंद स्वरूप जो है उस को:, तडित् आभास्-बिजली की सी शोभा जिस की है, तां-उस को।
यम, नियम, आसन, प्राणायाम, आदि अष्टाङ्ग योगों - के नियमों के पालन करने वाले सज्जनों के आशा तृष्णा आदि दुःखों को मिटाने वाली और उन के चित्तों में समाधि सुख की परा काष्टा को उत्पन्न करने वाली सच्चिदानंद स्वरूप, और बिजली की सी शोभा रखने वाली जगन्माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूं।
इंद्रिय जीनित, ध्यान द्यअरिथ यिम मन लय करनस पर आसान
तिहंद्यन चित्तन मंज सदा पंरा काष्टा संव्यथरुपज़च उपदावान
सत - चित - आनंदमय वुज़मल जन
(केवल योगी यस पावान)। पंपोश फुल्यिमत्य.

चंद्रापीडानंदित - मन्द - स्मित क्वत्रां चंद्रापीडालङ्कृत - लोलालक - भारां
इन्द्रोपेन्द्राभ्यर्चित - पादाम्बुज - युग्मां गौरी.॥4॥
चंद्र.आपीड - चंद्रमा शिरोभूषण वाले शिवजी महाराज को, आनंदित हर्ष-देने वाला, मंद - स्मित -वक्त्रां - जरा सी हंसी वाला मुख जिस का है उस को (अथवा शिवजी महाराज के आनंदित होने से मंद मुस्कान से शोभित मुख है जिस का उसको) चंद्र आपीड-शिरो भूषण चंद्रमा से अलङ्कृत शोभित, लोल, अलक, मारां-चंचल केश पाश हैं जिसके अथवा गुंघराले बाल हैं जिस के उस को; इंद्र उपेंद्र-इंद्र और विष्णु भगवान से, अभ्यर्चित-पूजा किये हुए पाद अम्बुज युग्मां-पाद कमलों की जोड़ी है जिस की उस को।
अपने स्वामी वा स्वात्मदेव से प्रहर्षित होकर मंद मुसकान से शोभित मुखवाली अथवा अपने स्वामी शिवजी महाराज को ही अपनी सहचर्या से प्रफुल्लित पाकर आप भी अतिहर्ष से विकसित मुखवाली और माया के जटिल पाशों से सुशोभित शिर वाली जगन्माता श्री गौरी जी के चरण कमलों की पूजा अति उत्साह के साथ इंद्र और विष्णु भगवान जेसे उच्च पदवी के देव भी करते हैं उसी माता के चरणों को मैं प्रणाम करता हूं॥
शिवजी यस वुच्छित हर्षस गोमुत (शिवजीयस वुछत हर्षस गामुच)
सोनय असुवनि मुख आसान शेरकि भूषण चंद्रम किन्य यस

चंचल केश पाश शोभायमान (कांकनि मस छुस शोभायमान)
यस भिथि चरणारबिन्दन हंदि जोरि पूजान इंदर तु श्रीनारान। पंपोश फुल्यिमत्य.

नानाकारैः शक्ति - कदम्बैर् भुवनानि व्याप्य स्वैरं क्रीडति यासौ स्वयम् एव
कल्याणीं तां कल्पलताम् आनति - भाजां गौरी.॥5॥

नाना आकारैः शक्ति कदम्बैः-नाना आकारों वाली शक्तियों के समूहों से, या असौ-जो वह भुवनानि-सब भुवनों को, व्याप्य-व्याप्त करके, स्वैरं-स्वंतत्रता से, अपनी इच्छा से स्वयं-एव आप ही, क्रीडति-खेलती है; कल्यांणीं-मङ्गल के स्वरूप वाली, जगत को सुख देने वाली जो है उस को। आनति भाजाम्-नम्रता से सेवा करने वालों को कल्पलतां-सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली कल्प वृक्ष की वेल जैसी जो है ताम्-उस को।

जो भगवती नाना रूप वाली अनंत शक्तियों से चतुर्दश भुवन को ओत प्रोत करके स्वेच्छा से आपही किसी की सहायता के बिना (अथवा आप एक जैसी रहकर) सृष्टि स्थिति और संहार का खेल रचती है, और जो भक्तजन नम्र होकर उस की पूजा करते हैं, उन के योग क्षेम रूप सब मनोरथों को वह सिद्ध करती है, उसी माता गौरी को में प्रणाम करता हूं।

अंत रछु शक्तीयन हुंदि नाना रूप यस व्यापितछु त्रन जगतन
पननी इच्छायि पानय खेलान॥ त्रन भुवनन सुख दीवान
बडि आर्चर किन्य् यिम छिस पूजान कल्प थर कामनायि छक पूरान। पंपोश फुल्यिमत्य.

मूलाधारात् उत्थितवन्तीं विधिरन्ध्रं सौरं चान्द्रं धाम विहाय ज्वलिताङ्गीम्
ध्येयां सूक्ष्मां सूक्ष्मतनुं तां तडित् आभां गौ.॥6॥

मूलाधारात-मूलाधार से उत्थितवंतीं-उठी हुई सौरं चान्द्रं धाम विहाय-सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश छोड़कर विधि रंध्रम्-ब्रह्मरंध्रं, सहस्त्रार को पहुंची हुई, ज्वलित अङ्गीम्-प्रकाशमान स्वरूप जिस का है, ध्येयां-जो ध्यान के योग्य है, सूक्ष्मां-जो सूक्ष्म है; सूक्ष्म तनुं-जो सूक्ष्म शरीर वाली वा अति सूक्ष्म स्वरूप वाली है तडित् आभां-बिजली की सी शोभा है जिस की तां-उस को मूलाधार से उठ कर जो कुण्डलिनी शक्ति इडा, पिङ्गला, नाडियों, अथवा प्राण और अपान रूप सूर्य और चंद्रमा के प्रकाशों को उल्लङ्घन करके ब्रह्मरंध्र अर्थात् सहस्त्रार में जगमगाती है, जो सूक्ष्म अति सूक्ष्म स्वरूप वाली बिजली की भांति है, और जिस को, योगी ध्यान से प्राप्त कर सकते हैं, उस माता गौरी की मैं बंदना करता हूं।

मूलाधार प्यठ नीरित युसु न्यथ ब्रह्म रंध्रस मंज गाह त्रावान
सूर्य चंद्र संज ज्योती त्राविथ यस पनने गाश न्यथ चमकान

ज़विज्य, वार्याह ज़विज्य शक्ती बुजमल जन युस न्यथ प्रजलान
स्थूल, सूक्ष्म सूक्ष्म खुत सूक्ष्म युस प्रणामस योग्य आसान। पंपोश फुल्यिमत्य.

आदिक्षान्ताम् अक्षरमूर्त्या विलसन्तीं भूते भूते भूत - कदम्बं प्रसवित्रीम्
शब्दब्रह्मानन्दमयीं तां प्रणवाख्यां। गौ.॥7॥

आदि 'अ' से लेकर क्ष अन्ताम्-'क्ष' तक अर्थात् स्वरूप वाली, अक्षर मूर्त्या-अक्षरों के रूप से, विलसन्तीं-चमकने वाली को; भूते-भूते सब महा भूतों अथवा हर एक प्राण - धारी में, भूत कदम्ब-जीवों के समूहों को प्रसवित्रीम्-उत्पन्न करती है जो शब्द ब्रह्म बेदों के आनन्द मयीम्-आनंद के स्वरूप वाली जो है प्रणव आख्याम्-प्रणव, ओंकार जिसका प्रशस्त नाम है उस को;

जो स्वर व्यंजनमय वर्णमाला के रूप से विकसित हुई है, जो आकाश, वायु आदि पंच महाभूतों में नाना प्रकार के स्थावर जङ्गम रूप सृष्टि को उत्पन्न करती है, और जो सब विद्याओं, भांति भांति की बोलियों, और शब्दों के आनंदमय स्वरूप वाली है और जिस का वाचक ओंकार है, उसी माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूं॥

'अ' प्यठ 'क्ष' स ह्यथ यिम अछर तिहंदी रूप युस अन्यथ उल्लसान
प्रथ कुनि भूतस आश्रित यस मोज्य जीवन हुंद्य ख्यल्य उपदावान
शब्द ब्रह्म आनंद मय सुय माता ओंकार यम्य सुंद नाव आसान। पपोश फुल्यिमत्य.

यस्याः कुक्षौ लीनम् अखंड जगत् अण्डं भूयो भूयः प्रादूरभूत अक्षतम् एव
भर्त्रा सार्धं तां स्फटिकाद्रौ विहरन्तीं। गौ.॥8॥

यम्याः-जिस के कुक्षौ-उदर में, लीनम्-लीन हुआ या छुपा हुआ, अखष्डम्-सारे का सारा जगत् अण्डम्-ब्रह्माण्ड, भूयो भूयः,-बार बार अक्षतम् एव-न टूटा हुआ ही, संपूर्ण ही, प्रादुरमूत-प्रकट हुआ, स्फटिक अद्रौ-स्फटिक अद्रि पर अर्थात् स्फटिक विशेष के रत्नों के पहाड़ कैलास पर (परमार्थ ब्रह्म रंध्र से है) भर्त्रा सार्धं-भर्ता के साथ 2 वा भर्ता का अर्ध भाग होकर, विहरन्तीं-विहार वा लीला करने वाली है जो. तां उस को।

कल्पांत समय जिस के भीतर अखण्ड ब्रह्माण्ड वारं वार बीज रूप से लीन होकर कल्पों के आदि में पुनः पुनः ज्यों का त्यों प्रकट होते हैं और जो अपने स्वामी महादेव के साथ साथ रहकर वा अमित्र होकर कैलास पर अथवा प्रति जीव के सहस्रार में विलास करती है उसी माता गौरी के चरण कमलों में मैं प्रणाम करता हूं॥

यसँदिस उदरस मंज लीन गामत्य अखंड ब्रह्माण्ड रोजान छि
भियि भियि तिमय प्रकट बनित पूरण भावस प्रावाण छि

भर्ता ह्यथ युस कैलाससप्यठ आसान अभिन्न फेरान छि। पम्पोश फुल्यिमत्य.

यस्याम् एतत् प्रोतम् अशेषं मणिमाला सूत्रे यद्वत् क्वापि चरं क्वाप्यचरं च
तां अघ्यात्म – ज्ञान-पदव्यागमनीयां। गौरी.॥9॥

यद्वत्-जिस तरह, सूत्रे-दागे में मणिमाला-रत्नों की माला, (पिरोई गई हो उसी प्रकार) यस्याम्-जिस में एतत्-यह अशेषं-सारे का सारा, क्वापि-कहीं चरम्-चलने वाले, जङ्गम, क्वापि-कहीं, अचरम् च-न हिलने वाले, स्थावर रूप से भी, प्रोतम्-पिरोया गया है; अध्यात्म ज्ञान-आत्म ज्ञान वा ब्रह्म ज्ञान की, पदव्या-पदवी, स्थिति से गमनीयाम्-प्राप्त हो सकती है जो, ताम्-उस को;

जिस माता में यह सारा स्थावर जङ्गम रूप जगत् दागे में पिरोई हुई मणिमाला जैसा स्थित है और जिसका साक्षात्कार सामान्यतः आत्म ज्ञान द्वारा ही हो सकता है उसी माता गौरी के चरणों में मैं प्रणाम करता हूं।

यस मंज कुनि चर कुनि थावर रूप सोरूय जगत वुरन आमुत छु
यिथ पाठ्य सूत्रस मंज रत्नन हंज माला शोभा धारान छि
ब्रह्म ज्ञान पदवी किन्य प्रावनी युस (भक्तन लोल किन्य् घारान छि) पम्पोश फुल्लिमत्य.

नित्यः सत्यो निष्कल एको जगत् ईशः साक्षी यस्याः सर्ग – विधौ संहरणे च
विश्वत्राण-क्रीडन-शीलां शिव-पत्नीं। गौरी.॥10॥

यस्याः-जिस भगवती की, सर्ग विधौ = सृष्टि रचने की विधि पर, संहरणे-संहार करने की क्रिया पर, च-भी, नित्यः-सदा अटल सत्यः-सत्य स्वरूप निष्कल-सब कलनाओं से रहित, निर-अवयव ब्रह्म, एकः-एक केवल, अद्वितीय जगत् ईशः-जगत् का ईश्वर, शंभु महाराज साक्षी-देखने वाला; है विश्व त्राण-जगत की रक्षा के, क्रीडन्-खेल करने के, शीलाम्-स्वभाव वाली जो है उस को; शिव पत्नीम्-शिवजी महाराज की जो अर्धाङ्गिनी है उस को.

सत्य स्वरूप नित्यस्थाई अद्वितीय निरवयव परं ब्रह्म जिस अपनी शक्ति की सृष्टि, स्थिति, संहार आदि लीला का साक्षी है और चतुर्दश भुवन की तात्विक रक्षा ही जिस की लीला का प्रयोजन है उस माता गौरी के चरणों में हार्दिक प्रणाम करता हूं।

सृष्टि थ्यत संहार यम्य संज लीला साक्षी रूजित वुछान छु
नित्य सत्य कवल निष्कल ईश्वर ती ती डीशित फुल्लान छु
जगतस रछनचि लीलायि करवन्य शंभू संज यस शक्ती छै। पंपोश फुल्यिमत्य.

प्रातः काले भावविशुद्ध प्रणिधानात् भक्त्या नित्यं जल्पति गौरीदशकं यः
वाचां सिद्धिं सम्पदम् उच्चैः शिवभक्तिं तस्यावश्यं पर्वत-पुत्री विदधाति। गौरी. ॥11॥

प्रातः काले-प्रभात समय को, यः-जो, भाव विशुद्धः-शुद्ध अंतः करण वाला, प्रणिधानात्-समाहित होकर, प्यार देकर, नित्यं-हर एक दिन, सदा, भक्त्या-भक्ति से गौरीदशकं -गौरी माता की दस (श्लोकों वाली स्तुति) जल्पति बोलता जाता, है पाठ करता है, पर्वत पुत्री-पार्वती जी तस्य अवश्य उस को अवश्य, वाचां सिद्धिं-वाक सिद्धि, संपदम्-संपदा (और) उच्चैः उत्तम, शिवभक्तिं-परमात्मा की भक्ति, विदधाति दान करती हैं।

जो शुद्ध अंतःकरण वाला भक्तजन समाहित होकर प्रति दिवस प्रभात समय को भक्ति से श्री गौरी माता की इन दस श्लोकों वाली स्तुति का पाठ करता है उस भाग्यवान को श्री पार्वती जी, अवश्य वाक् सिद्धि संपदा और शिवजी महाराज की उत्तमोत्तम भक्ति देकर – कृतार्थ करती है।

प्रातः कालस ध्यान दिथ युस न्यथ शुद्ध मन पजि लोलु परान छु
योग ज्ञान भक्ती दह यिम वाक गौरी हंज यसु तोता यछ
अवश्य तमिस जगतच़ माता सफल वाणी करान छय
बडि बुड विभव भियि शुम्भु सुंज थदि थज भक्ती दिवान छय। पंपोश फुलवन्य.

॥ श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिः ॥

ओं शिवाय नमः।
महेश्वराय नमः।
शंभवे नमः।
पिनाकिने नमः।
शशिशेखराय नमः।
वामदेवाय नमः।
विरूपाक्षाय नमः।
कपर्दिने नमः।
नीललोहिताय नमः।

शंकराय नमः।
शूलपाणये नमः।
खट्वाङ्गिने नमः।
ओं कामारये नमः।
अंधकासुरसूदनाय नमः।
गङ्गाधराय नमः।
ललाटाक्षाय नमः।
कालकालाय नमः।
कृपानिधये नमः।

भीमाय नमः।
परशुहस्ताय नमः।
मृगपाणये नमः।
जटाधराय नमः।
कैलासवासिने नमः।
कवचिने नमः।
कठोराय नमः।
त्रिपुरांतकाय नमः।
वृषाङ्काय नमः।
ओं विष्णुवल्लभाय नमः।
शिपिविष्टाय नमः।
अम्बिकानाथाय नमः।
श्रीकंठाय नमः।
भक्तवत्सलाय नमः।
भवाय नमः।
शर्वाय नमः।
त्रिलोकेशाय नमः।
शितिकंठाय नमः।
शिवाप्रियाय नमः।
उग्राय नमः।
कपालिने नमः।
ओं वृषभारूढाय नमः।
भस्मोद्धूळितविग्रहाय नमः।
सामप्रियाय नमः।
स्वरमयाय नमः।
त्रयीमूर्तये नमः।
अनीश्वराय नमः।
सर्वज्ञाय नमः।
परमात्मने नमः।
सोमसूर्याग्निलोचनाय नमः।
हविषे नमः।
यज्ञमयाय नमः।
सोमाय नमः।
पञ्चवक्त्राय नमः।
सदाशिवाय नमः।
विश्वेश्वराय नमः।
ओं वीरभद्राय नमः।
गणनाथाय नमः।
प्रजापतये नमः।
हिरण्यरेतसे नमः।
दुर्धर्षाय नमः।
गिरीशाय नमः।
गिरिशाय नमः।
अनघाय नमः।
भुजङ्गभूषणाय नमः।
भर्गाय नमः।
गिरिधन्वने नमः।
गिरिप्रियाय नमः।
कृत्तिवाससे नमः।
पुरारातये नमः।
भगवते नमः।
ओं सात्त्विकाय नमः।
शुद्धविग्रहाय नमः।
शाश्वताय नमः।
खंडपरशवे नमः।
अजाय नमः।
पाशविमोचकाय नमः।
मृडाय नमः।
पशुपतये नमः।
देवाय नमः।
महादेवाय नमः।
अव्ययाय नमः।

हरये नमः।
ओं प्रमथाधिपाय नमः।
मृत्युञ्जयाय नमः।
सूक्ष्मतनवे नमः।
जगद्व्यापिने नमः।
जगद्गुरवे नमः।
व्योमकेशाय नमः।
महासेनजनकाय नमः।
चारुविक्रमाय नमः।
रुद्राय नमः।
भूतपतये नमः।
स्थाणवे नमः।
अहिर् बुध्न्याय नमः।
दिगम्बराय नमः।
अष्टमूर्तये नमः।
अनेकात्मने नमः।
ओं पूषदन्तभिदे नमः।
अव्यग्राय नमः।
दक्षाध्वरहराय नमः।
हराय नमः।
भगनेत्रभिदे नमः।
अव्यक्ताय नमः।
सहस्त्रक्षाय नमः।
सहस्रपदे नमः।
अपवर्गप्रदाय नमः।
अनन्ताय नमः।
तारकाय नमः।
परमेश्वराय नमः।

।। इति श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिः संपूर्णा।।

सौजन्य से : श्री आर. के. सपरू

कअशरिस मंज

उत्पलदेवुन संग्रहस्तोत्र

कश्मीरी अनुवादक
श्री दामोदर नेहरू

परिपूरण छुख चित-घन निर्गुण अमरेश्वर!
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर ॥
सुख क्या छुम त दुख क्या छुम छोट वनहय् ईश्वर
तिय वुछतम् वार पाठीय छुक् पान करूणाकर।
सुख यि च्यय् सूत्य मिलचार छुम् दुख च्यय् निश छुमदूरचर
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर॥1॥
छुम् योदवय् जाव्युल ति मंल तव द्रेण्टान छुक् न म्यय्

तत् फेष् दिम चोवापार्य छुक् च शरणन हुन्द् दय्।
नोन् बनिथ् भावुम् पनुन् रूप युस् निर्मल अनश्वर, जय0 ॥2॥
सोरुय् जगथ् चोनुय् रूप् च्यत-अमर्यत् अक्षय
तथ्य मंज थ्यत् प्राविथ् बय न्यथ पूजा करहय।
पत आस्यतन् ज्योन या मरुण नत आस्यतन मूक्ष-वर, ज0 ॥3॥
'छुस् व ईश्वर, रूपवान् छुस् पण्डिता छुस् सुन्दर,
जगतस् मंज शूभवुन युथ् छा म्य ह्यूयू कांह बराबर।
राग चानै जाग ह्यथ ब्यहय् रागी बनान् अमर, जय0 ॥4॥
त्यलि देवादिदेव! अज्ञान म्यति कास भास अद्वय
प्रथ जाञ मंज जाञरावतम् पननुय रूप अव्यय।
सन्मुख् पदिकमलन हंजि पूजायि हुन्द दिम वर, जय शंकर0 ॥5॥
युथजि पानय ध्यान धारहथ पाअन्य पानय बुछहथ,
पअन्य पानय नाल रटथ् बड यि पूजा कर न्यथ्।
चानि अनुभाव सर्वदा, सुय अनुग्रह वुन्य म्यति कर, जय शंकर0 ॥6॥
जगतस मंज कांह पदार्था चानि सत्तायि छु न ब्योन्
चाञ पूजा बोड़ उत्सव, यलि टोठान भक्त्यन्।
यिम छि दुनवय कथ शूभान तिमनय यिम गय पर्, ज.य शंकर0 ॥7॥
चानि पूजायि हन्दि अमर्यत..रस मस-खास्य भर्य भर्य
सर्वभावनायि हन्दय पूरिथ, सर्व-साक्षात् कर्य कर्य।
इन्द्रिय-मुखवय च्यय च्यय् मोत रोजहा निरन्तर, ज.य शंकर0 ॥8॥
यति जाञ मंज व्ययि केंहति छुन, यति चय छुक् हेरि.बुन्
स्वप्रकाश-पान वुलस्योमुत छुक् चअ पानय हन् हन्
तथ्य जगत्-आनन्द-नगरियि मंज करहय आर्चर, जय शंकर0 ॥9॥
दासभावाह च्यय म्य द्युतथम् परमेश्वर! पानय
दर्शनकुय छुम अभिलाष, छम न तय कांह आनय
तोति दिजिहेम पादिकमलन सीव करनुक अवसर, जय शंकर0 ॥10॥
शक्तिपात विजि जांह ति मा प्योख स्वरनी ही भगवन्!
अज क्याजि छुक खेलनावान म्यानि विजि अन्य कतरयन!
स्वप्रकाश पुशरावनस वेशि क्याजि छम यीच दर-दर, जय शंकर0 ॥11॥
भासवुन रूप जगतस मंज, वास करवुन मनि मंज
विषयन मंज पर-शक्ति रूप त्र्यन जगतन हंज संज

परिपूरण प्रकटयोमुत व्छहथ व मायायि पर, जय शंकर0॥12॥
चानि अनुग्रह यछि सूतिय क्वुछि खसहा बेरोक
महलखानस चानिस मंज, चअन्य मर्जी चीन जोक।
परम-आनन्द अमर्यत मस नच आनन्द निर्भर, जय शंकर0॥13॥
यमि युक्तियि सोरय भव भासान छुख चितरूप
स्पर्शमात्रय पर्जनावान, जाजरावान विश्वरूप।
तमि युक्तियि पूजान छिय चअन्य जन च्यय अन्दर् जय शंकर0॥14॥
थ्यथ् दिवान छुक जगतस यलि, भासान छुख चितरूप
लय करान छुक जगतस त्यलि आसान छुक सतरूप
ग्रायि मारान आनन्दघन, उपदान छु चराचर, जय शंकर0॥15॥
युस भखत्य चेन सोरुय जगत पानस मंज डेशान
अविकल्प-भाव पानस मंज पाजपानय छु तोषान।
परमानन्द-घन रूजिथ, कति तस यमसुन्द डर, जय शंकर0॥16॥
नीलकण्ठ! अखण्ड-अमर्यत हालाहल चुन छुम
चानि अनुग्रह च्यय सूत्य यलि चित् रूप आस समि-सोम।
नत योदवय अमर्यत मेलि, छुमन रोचान अख जर, जय शंकर0॥17॥
आरहति मुख नाल दिम चअन्य, मायि वखनय रूप चोन
राग चाने जाग ह्यथ न्यथ चित-आनन्द-घन म्योन।
यिछ यि पूजा टाठ वरिना करिना म्यति अमर,जय शंकर0॥18॥
चानि लीलायि परमेश्वर ह्यकि कुस गंजराविथ
परिपूरण रूप भाविथ क्याजि छुहम् मशराविथ।
चित-अमर्यत अथि लभिथ चनसय छम छांगर, जय शंकर0॥19॥
चय अपार चय निष्कल चय छुक चटान भेद-भूधर
न्यंगलावान सोर संसार पअन्य-पानस अन्दर।
अम्य आवेश पूज करहय—शंकर! शिव शंकर!
जय शंकर, जय शंकर, जय शंकर भय हर॥20॥

सद्गुरुवन्दनम्

—श्री जानकीनाथ कौल 'कमल'

नमः श्रीगुरुवर्याय भूर्भुवः स्वर्बिभर्तये।
स्वप्रकाशस्वरूपाय मोहग्रासैककर्मणे।। १।।

संसाररूप मोह को ग्रास करना ही जिसका कर्म है, जो परिपूर्ण ज्ञानमय होने से स्वप्रकाशस्वरूप है और जो विश्वरूप में भूः भुवः स्वः (त्रिलोकी) को और जीव रूप में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति (त्रि-अवस्था-रूप तीन वृत्तियों) को एकवृत्यात्मक तुर्य से धारण करता है, उस मोक्ष-स्वरूपता के अनुग्रह करने वाले गुरु महाराज को नमस्कार है।

विमर्शभावेऽपि स्थितोऽसि देव! विमुक्तरूपे सुविजृम्भितोऽसि।
अपार संसार सुशाद्वलेऽत्र विमर्शसत्स्पन्दसु शोभितोऽसि।।२।।

हे प्रकाशस्वरूप देव। आप विमर्शभाव में ही ठहरे हुए हैं वास्तव में विमुक्तरूप होते हुए आप जगद्रूपता में स्वाभाविक विकास पा रहे हो। संसार की इस विस्तृत तथा आकर्षक शाद्वल भूमि पर विमर्श के सत् -स्पन्द से शोभायमान हो।

शिवस्वभावो निजलाभतुष्टः शिवस्वरूपो निजधामनिष्ठः।
शिवप्रभावः शिवशाश्वतात्मा शिवोऽस्यहं त्वां शिव दृष्टिमीडे।।३।।

आप अपनी शिवता की सहजावस्था में आत्मलाभ के कारण सन्तुष्ट हो। आप अपने शिव-स्वरूप में स्वस्थ ठहरे हो। सनातन अद्वैत शिवता की इस विमर्शमय अनुग्रह-दृष्टि की मैं स्तुति करता हूँ।

गंभीरभावा गुरुमूर्तिरिषा अनन्यभक्त्या परितुष्टवृत्तिः ।
वचांसि वच्मि नम इत्युपास्त्या कृपाकटाक्षाय समाश्रितोऽस्मि।।४।।

भावना की गम्भीरता से घ्यान में स्थिर हुई गुरुमूर्ति को अनन्यभक्ति से आत्मलाभ के निष्ठापूर्वक परितोष में उपासना के व्यङ्ग से 'नमस्कार' यह वचन कहता हूँ कयोकि मैंने आपके कृपा-कटाक्ष के लिए ही आप का आश्रय लिया है।

स्वस्थोऽसि शान्तोऽसि सुलक्षणोऽसि संसारव्यामोह विवर्जितोऽसि।
भक्तैरुपास्योऽसि सुवत्सलोऽसि।।५।। शिवःपरेशोऽसि सुमङ्गलोसि।।

आप स्वरूप में स्थिर (स्वरूपनिष्ठ) हैं अतः शान्ति-सम्पन्न हैं। इसी शुभ सुन्दरतम लक्षण से सुशोभित होने के कारण आप संसार की व्याकुलता से सर्वथा रहित हो। भक्तजन आपकी पूजा वात्सल्य - भाव से करते है। आप मङ्गलमय परम शिव-स्वरूप हैं।

दूरी कृतानन्त विकल्पवार्ता उन्मीलितानन्तस्वतन्त्रदृष्टिः।
नाभावसिद्धिर्न च भावहानि-रस्मद्गुरौ तं शरणं प्रपद्ये।।६।।

जिन्होंने पूर्वजन्मों के अनगिनत द्वैत विकल्पों की वार्ता (निश्चल और दृढ़ योग-साधना

द्वारा) समाप्त (विलीन) कर दी है और अद्वैत शिव-स्वरूप में मग्न अपार दृष्टि को उन्मीलित किया है। इस प्रकार जिन हमारे गुरुदेव में न किसी अभाव की सिद्धि प्रकट होती है और न किसी भाव की हानि का ही अनुभव होता है उन (गुरु महाराज) की हम शरण लेते हैं।

दयार्द्रदृष्ट्या भवतो वदामि कृपाम्बुवृष्ट्या भवतः स्मरामि।
अपाङ्गहृष्टया भवतो भजामि त्वामेव शम्भुं शरणं व्रजामि॥७॥

दया से आर्द्र आपकी (अनुग्रह) दृष्टि के कारण ही मैं आपका वर्णन करता हूँ। कृपा से भरी हुई आपकी अमृतवर्षा के कारण ही मैं आपका स्मरण करता हूँ। आपके अनुग्रह - कटाक्ष से हर्षित होने के कारण ही मैं आपका भजन करता हूँ। अतः मैं आप कल्याणमय शिव-स्वरूप की शरण लेता हूँ (शिव-स्वरूप में विलीन होने के अभ्यास में तत्पर हूँ)।

वितरसि ज्ञानं स्वात्मस्वरूप विचरसि विश्वे व्याप्तस्वरूप।
विकिरसि दृष्टिं करुणारूप दलयसि भेदमनुग्रहरूप ॥८॥

हे स्वात्मस्वरूप। आप अभेद शिव चैतन्य के ज्ञान का वितरण करते हैं। हे व्यापकस्वरूप। आप इस चराचर विश्व में व्याप्त हैं। हे करुणारूप गुरुदेव। आप अपनी कटाक्ष-दृष्टि छितराते (बेरोक प्रदान करते) हैं। हे अनुग्रहरूप भगवन्! भेदभाव में आई हुई इस जीवभाव की अणुता का आप दलन करते हैं।

अलक्ष्यलिङ्गा हि विलक्षणेयं विजृम्भिता दैशिकदक्षदृष्टिः।
अलौकिकानां तु अलौकिकैषा विलास कारुण्य शिवात्मवृष्टिः॥९॥

गुरुराज की इस युक्तिपूर्ण अनुग्रहदृष्टि का कोई विशेष लिङ्ग (निशान, चिह) नहीं है क्योंकि यह अपने ही स्वातन्त्र्य की विलक्षणता में विकसित होती है। तभी तो यह सारी अलौकिक वस्तुओं में उत्कृष्ट अलौकिक हैं यह करुणा के विलास से अद्वैत शिवमयता का अमृत बरसाती है।

आचार्यवर्यो सुखबोधगर्भः समुल्लसत्स्वात्मविलासयुक्तः।
यो लक्ष्मणोऽनुग्रहदृष्टिदक्षः शिवं नुमस्तं नरविग्रहस्थम्॥१०॥

आचार्यों के भी आचार्य (हमारे गुरुदेव) 'शिवोऽहम्' भाव के सहज बोध (ज्ञान) से परिपूर्ण है। स्वात्मविकास की क्रीडा में सुप्रसन्न जो शुभलक्षणों से युक्त हैं और अनुग्रह-दृष्टि करने में कुशल हैं उसी नर शरीर में शोभायमान् शिव को हम नमस्कार के द्वारा अपने को समर्पित करते हैं।

कटाक्षकारुण्यतयार्द्रभावो विमर्शपूर्णोऽसि सदा स्वभावे।
विनाशिताशेषविकल्पवार्ता वृणोसि शिष्यान्निजधामशैवे॥११॥

कृपाकटाक्ष करने के लिए आप करुणा से आर्द्रभाव वाले हो और अपने दृढ़ स्वभाव में

विमर्शमय हो। अशेषरूप से विकल्पात्मक जगत् की भेदवृत्ति का नाश करके ही आप शिष्यों को अपने शिवधाम (पर-भैरव धाम) में प्रवेश कराने का अनुग्रह करते हो।

स्वातन्त्र्यशक्तिस्तव विस्फुरन्ती इच्छादिभिर्या शिवतां तनोति।
सुस्पन्द-सन्दोह-विमर्शरूढे-विकासवृत्त्या प्रतिबुध्यसे त्वम् ॥१२॥

शिवरुप आपकी स्वतन्त्रशक्ति इच्छा, ज्ञान और क्रिया में प्रकट होकर शिवमयता का विस्तार करती है। (इस प्रकार) 'अहं' और 'इदं' रूप स्पन्द समूह के विमर्श में शुद्धविद्या की विकास वृत्ति से आपका यथार्थ ज्ञान होता है।

प्रसन्नमुद्रा प्रभवत्प्रकाशं भजामि देवं गुरुलक्ष्मणीशम्।
नमामि भक्त्या स्वसुखे निमग्नं स्वभावसिद्धं परशक्तिरूपम्॥१३॥

प्रसन्नमुद्रा में प्रकाश के आगार देवतास्वरूप जो गुरु महाराज हैं उन ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण का मैं भजन (सेवा) करता हूँ। अपनी शिवता के अनन्त सुख में मग्न (विमर्शघन) और स्वभाव से ही सिद्ध परशक्तिरूप गुरु-विग्रह को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वातन्त्र्यशक्त्या तव बोधसिद्धे भातोऽसि भक्तान् सुविमर्शरूपः।
स्वतन्त्र चिद्रूप परात्म तत्त्व बन्द्योऽसि वन्द्योऽसि सदा सुवन्द्यः॥१४॥

आप अपनी स्वतन्त्र शक्ति से ही भक्तों को स्वरूप ज्ञान की सिद्धि प्रदान करने के लिए स्वरूप-विमर्शमय भासते हो। हे स्वतन्त्र! हे चिद्रूप! हे परस्वरूप उत्कृष्ट तत्त्व। आप सबों के द्वारा वन्दना के योग्य हैं। आप को बार बार प्रणाम।

सौजन्य–
सन्त समागम शोध संस्थान्
374— पण्डोका कॉलोनी,
पलौरा, जम्मू - 181121

शैवाचार्य ईश्वर स्वरूप
स्वामी लक्ष्मण जुव
(1907-1991)

—पं० जानकीनाथ कौल 'कमल'

'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संसारसमुद्रमध्ये
लीये परेब्रह्मनि यस्य चेतः।।'

'यथ बे अन्त संसारकिस समन्दरस मंज यमिस कांऽसि भखऽत्य सुन्द मन तस परब्रह्म परमशिवस मंज लीन गव सु यथ कुलस मन्ज ओस जामुत सु कुल गव पवित्र ति गव जि तथ कुलस मंज रोजि यऽचकाल ताम शिव भक्तियि हऽंज विभूति। यस सौभाग्यवती माजि सु जाव सोति गयि कृतार्थ माऽनिव जि शूभरावनऽ आयि; ब्ययि यथ दीशश मंज सु जाव तथ भूमि प्यठ रोजन यऽचकाल ताम लूख पुण्य करान, पनुन तऽ सारिनऽय हुन्द रुत करान। अमिसऽय छु शास्त्रव रुत सन्त तऽ महापुरुष वोनुमुत।'

यिथिय अऽक्य महापुरुषन ह्योत ज़न्म माजि कशीरि मंज वुहिमि सदी हऽन्दिस शुरूहस मंज। यि आऽस बऽड भाग्यवाऽनी दीशि खाऽतरऽ ति तऽ सारिय संसारऽ खाऽतरऽ ति, ति क्याजि यिमव द्युत फ्चुर स्यठा काल्किस दबेमतिस कशीरि मंज ब्रोंह काल प्यठ वोऽतलेमतिस अद्वैत शैव मतस। यिम आऽस्य साक्षात् शिव सुन्दुय अवतार—शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप श्रीमान् स्वामी लक्ष्मण जुव। वलिव अज करव यिहंऽजय चर्चा तऽ गुण कीर्तना—

कुनवुहिमि सदी हंऽदिस पऽतिम्यन वरियन मंज ओस अख भाग्यवान पुरूष पंडित नारायणदास रैणा श्रीनगरस मंज फतेह कदलस नखय नम्चिबलऽ रोजान – स्यांद - सादअ, गाठुल तऽ गम्भीर। यिहंऽज भाऽर्या आऽस सौभाग्यवती तऽ अरिणिमाल ओसूस नाव। मिजाज किञ आऽस त्रोऽश अमा पोऽज मायमोहबतस ति वातिहेस नऽ कांह। दोशवय बाऽच आऽस्य भगवान संऽज भक्ति ति करान तऽ व्यवहार ति शोऽद करान। यिमन ओस कुल ब्राह्मुन। राम जुव ओसुस नाव। यि ओऽस शिव भखऽत्य तऽ मनकाक मोंग ओस अमिस गुरु। ब्राह्मनाऽज्य ति ओस करान त ईश्वर ति स्वरान। भगवान शिव सऽन्दि अनुग्रह किन्य लोऽग यि परमार्थ वति कुन ज्यादय तऽ व्यवहार गव पथ। यिथ पाऽठय वछिस छि दवुऽध चावनऽ विजि गाऽव निशि रजि लमिथ अलग करान तऽ टिकिलिस गंडान तिथय पाऽठ्य आव राम जुव शिव भक्तियि किन्य यूग अभ्यासस कुनुय गण्डनऽ। 'गले पादिकया नाथ नीयते सद्गुरुं प्रति'। अमिस प्यव एकान्त-वासुक (खलवक्त

नशीनी) हुन्द जरूरत। श्रद्धालु नारान जुवन दिच अमिस जाय। तिमन ओऽस पननि गरि निश हना दूर अख लोकुट मकानऽ सु द्युतुख अमिसऽय। वोन्य आऽस्य यिम बाऽच जऽ तऽ शुर्य राम जुवऽन्य सीवा करान। तऽ राम जुव ओस पनऽनिस ईश्वरस सऽत्य गथ करान।

समय आव तऽ लालऽसाऽबन ह्योत जन्म यिमन भक्तिमानन निश। यि दोह ओस वहिकऽघटऽपछ बाह (यानि मई ९, १९०७)। द्युऽस तऽ देवार प्रजलेयि। सिरियि भगवानन कोऽर असवऽनि मोऽख उदय। स्वामी राम जुवस सूजऽख रऽच शेछ जि सोन्दर बालुक जाव। दपान छि जि युथुय तिमव यि बूज त्युथुय वऽथ्य थोऽद तऽ ह्योतुख नचुन यि वनान जि 'ब छुस राम तऽयि गव लऽक्षमण'। 'रामोऽस्म्यहं लक्ष्मण एष जातः इत्येव गायन् सहसा ननर्त'। अमिस सोन्दर बालकस कुरुख 'लक्ष्मण' नाव तऽ लालऽ साऽब आऽसस माऽज्य टाटि नावऽवखनान। लालऽसाऽब आव बडि प्रेयम तऽ मायि, दोऽध तऽ मलायि सऽतिय रछनऽ। यि ओस ज्यादतर न्यन्दरि मंजय रोजान मतलब जि अन्तरमोखुय ओस आसान। स्वामी रामजुवस निश ति आऽसिस कुनि कुनि निवान तऽ तिहुन्द आऽशीरवाद रटान।

लालऽसाऽब ओस त्रयिमिस वरियस मंज तऽ अकि दोह वोथ सुलिय न्यन्दरि तऽ लोऽग ओरऽ योर नचनि फेरनि गरस मंज। अचानकनऽय वुछुन पनुन बोऽड बोय महेश्वरनाथ रैना अकिस कुठिस मंज चाटऽकोऽट कऽरिथ बिहिथ। अऽछय आसन वटिथ थविमऽच तऽ नस्ति ओस दोयव ओंगऽजव सऽत्य थप करिथ। यि गव हाऽरतस तॅ गोस नजदीख। तऽम्य यलि अऽछ्य मुचॅरावि तॅ लालॅ साऽबन पृछुनस–

'बाऽय साऽब। तोह्य क्याह छिवॅ अऽछय वटिथ तॅ नस रटिथ करान?'

तिमव कऽऽर छुपय तॅ वोनहस नॅ केंह।

लालॅ साऽबन वोनॅनस ब्ययि तॅ ब्ययि।' तोंह्य क्याजि छिवॅ नॅ म्य वनान ? वनिव माहरा क्याह छिव करान?' बाऽय साऽबस लोग नॅ चारॅ केंह ति तॅ वोनहस–'बॅह स छूसन सु परमात्मा वुछुन यछान तवय छुस तमिसुन्द ध्यान करान।'

लालॅ साऽबन वोननस वापस – 'म्य हावख ना?' तिमव वोनहस – 'ब्यह पथर, अऽछ्य कर बन्द तॅ नस्ति कर थप।'

यि वनान वनानॅय गव लालॅ साऽब मगन तॅ छुनॅ कॅतिस कालस ताम वुथानय।

बाऽय साऽबस लऽज्य फिफिर तॅ तंम्य कोरनस आलव। इसॅरार करिथ पृछुनस चॅ क्याह ओसुख करान।

लालॅ साऽबन द्युतनस जल जवाब–'बॅ माहरा ओससन बडि-बोऽज वुछान।'

अवॅ पत ओस लालॅ साऽब विजि विजि अऽछय वटिथ बिहान तॅ मगन गछान। मंजॅ मंजॅ

ओस ज्यादय बेह्यसी मंज रोजान। माऽलिस माजि लॅज्य फिकिर। तिम गयि पीरन तॅ फकीरन। केंह ति वुछिख नॅ अमिस फरख गछान। अकि दोह गयि दोशवय बाऽच लाल साऽब ह्यथ स्वामी राम जुवस निश त वोनहस–

'महाराज। यि बालुक छु अऽछय वटिथ तॅ छुवप करिथॅय कतिस कालस रोजान। मंजॅ छस जन तॅ लार्रॅनि गछान। अमिस कर्यतव पाटहन त गछिहे ठीक।'

स्वामी रामजुवन कॅर अमिस बालकस नजराह तॅ वोनॅनख–'गछिव, मॅ अन्यूस सेथ। यि अमिस छु गोमुत ति गॅछ्यतन म्य। कलस प्यठ गछ्यस थनि रचिहेना थवॅन्य। बस।'

अवॅ पतॅ हेछिनोव रामजुवन यि बालुक (लक्ष्मणजुव) सन्ध्या तॅ सन्ध्योपासना ब्यियि महागायत्री जप करुन।

केंह वरीय गय। अकि दोह गव लक्ष्मण जूव स्वामी रामॅ जूवस निश। स्वामी जियन बुलाव पनुन ज्युठ शिष्य महताब काक पानस निश तॅ वोनॅनस– 'महताब काक । यि शरीर रोजि नॅ वोऽन्य ज्यादॅकालस। यि शि वुहुर बालुक लक्ष्मण जूव छुय हवाल। अमिस छुय नॅ केंह करुन। यलि यि शुराह वुहुर वाति त्यलि गछि अमिस यि वोपदीश वनुन। यि छु पपिथ ओरय।' रेत्य खण्डिय गयि स्वामी राम जी फागन घटपछ चोऽदुश क्युत (१९१४ई०) शिव-समाधि मंज लीन। लक्ष्मण जुव रूद्य स्वामी महताब काकस निश ग्वर-भावनायि किञ गछान। यपाऽर्य ओस स्कूल ति गछान। अऽमिस आऽस विद्या ओरय वुजान। जमाऽच जमाऽच खसान वोत यि नविमि जमाऽच। किताब दजि सऽत्य ओस आसन-पठ ति सऽत्य थवान। कलासस मन्ज ओस कुनि कुनि अलग कुन आसनस प्यठ बिहिथ ध्यान-मग्न सपदान। परनावन वाऽलिस अध्यापक जियस ति गयि अमिच खबर। तिमव कोऽरुस नॅ केंह ति खेञ्चल। बाकय बचन ति वोनुख सावधाऽनी वर्तावुन्य।

लक्ष्मण जुव वोत शुराह वुहुर तॅ स्वामी महताब काकनि वुपदीशुक वोत समय। अव पतय लोऽग यि परमार्थ अभ्यासस कुनुय त न ह्यचन नौकरी मटि न नेथरऽय। सिरिफ दुपुन माऽलिस 'म्य दियिव घरि न्यबर अलग कमरहना बनाऽविथ तॅ बॅ रोऽजॅ तऽत्य। घरि आसॅ बतय योत ख्यवान'।

नारान जुव ओस ओसूद हाल तॅ दिलॅ किन्य शोऽद। घरि नजदीखॅय ओसु मऽऽरअ प्यठ नाव् बनावनुक कारखान। दोऽपनस, अच्छा माऽरबल दिमय मकान बनाऽविथ तॅ तऽत्य बेह । स्यथ शे मरॅ गयि तॅ केंह ति सपुद नॅ। लक्ष्मण जुवन थऽव अकि दोह बायन हंऽदि नाव अख चिटिपऽत्र–हना लीखिथ–''म्यान्यव बायव। बॅ छुस बडि-बोऽड छांडनि नेरान। म्याऽनिस माऽलिस तॅ माजि कर्यज्यव' वारऽ पाऽठ्य राऽछ-रावट। – तुहुन्द लालॅ साऽब।' पानऽ द्राव अख पूथ्य ह्यथ कांऽसि पृछऽनय त वातान वातान वोत 'साध' माल्युन' (हन्दऽवाऽर्य तहसीलस मंज)। ओऽर गछान गछानॅय आऽस यिमन वतिय स्यठा बशाशत

तॅ शिव अनुग्रह सपुदमुत।
गरि लोऽग छाण्डव। पुलीसस खबर दिथ तॅ रसूख वर्ताऽविथ ति द्राव नॅ कुनि पताह। अकि दोह वोऽत पोस्ट कार्ड सोपोर प्यठ अकिस रिश्तदार सुन्दयथ मन्ज लीखिथ ओस–'लाल साऽब वुछ म्य हन्दवोर गछान। सु आसि सादमाल्युन गोमुत।' ति बूजिथय गयि नाराण जूव त महताब काक स्योदुय सादमाल्युन। गरॅ यिनॅ खाऽतरॅ कोरहक जोर। तय सपुद जि युथुय तिहिन्दि बापत अख अलग त एकान्त पाऽठ्य रोजनु खाऽतर मकान गछि तयार त्युथुय यिन तिम श्रीनगर वापस। तिय सपुद। लक्ष्मण जुवन ह्यु वोऽन्य माऽरबलकिस मकानस मंज शैव-शास्त्रन हुन्द अध्ययन करुन। पण्डित महेश्वरनाथ राजदान यिम शास्त्रन हऽन्द्य अख थदि पायिक्य विद्वान आऽस्य तॅ स्टेट रिसर्च डिपार्टमेन्टस मन्ज मुलाऽजिम आऽस्य तिमॅनॅय कऽरॅख शास्त्र परनावनॅ खॉतर प्रार्थना। राजदान साऽब आऽस्य लालऽ साऽबस माऽरबलय परनावनि यिवान। ततिय आऽस्य पानॅ अभ्यासस मंज लीन आसान।
अव पत सन् १९३३-३४ हस मंज छाऽर लक्ष्मण जुवन इश्बऽर गुप्त गंगायि नखय एकान्त - वास खाऽतरॅ जाय । अपाऽर्य कोह दामनस प्यठ बनाऽवॅ खुल जायि अख बोऽड बुंगल त बाग युस म्यव कुल्यव तॅ पेशि थर्यव सऽत्य शोलान ओस। क्याह दैवीय सुन्दरता आऽस अति। अथ नखय बनोव शारिका दीवीयि हऽन्द्य माऽल्य श्री जियालाल सोवोरी साऽबन ति पनऽति वीतराग, ज्ञानगर्भ त शिवभक्त लडकियि बापत अख सुन्दर बुंगलु। शारिका दीवी आऽस स्वामी लक्ष्मण जुवन शिष्य भाव शरण आमऽच तॅ यिमव आऽस पूर्व-परिचित अनुभव किञ स्वीकार कऽरमऽच।
यि समय ओस सन् १९३४-३५, ओर आऽस्य स्वामी जियस निश जॅ अन्तरंग म्यथऽर यिवान। अख ओस इश्बर गामस मन्जॅय रोजनवोल पंडित सतराम। यि ओस ब्राह्मण लडकॅ मगर परनय लेखनय ओस बोऽड ज्ञानवान तॅ भक्तिमानं ब्याख म्यथर ओस ब्रह्मचारी नीलकण्ठ ज्योतिषी शहर प्यठ आऽस्य यिवान यिमव पत ऋषिकेश गछिथ संन्यास द्योऽर तॅ संन्यास नाव ओसुख श्री स्वामी नीलकण्ठानन्द सरस्वती। यिम चोनवय महानुभाव आऽस्य वक्त-वक्त समिथ योगवासिष्ठ, ब्रह्मसूत्र बेतरि शास्त्रन ति फचुर दिवान। शारिका दीवीयि कोऽर अभिनवगुप्त जी संऽदि तन्त्रालोकुक तॅ ब्ययन शैव-शास्त्रन हुन्द अध्ययन तिऽल्य स्वाऽमी लक्ष्मण जुवस निश सो शिवयोगिनी आऽस शिवमयी रोजान प्रथ समयि। यिथ पाऽठ्य फुलिमॅतिस गुलाबस अऽन्द्य-अऽन्द्य छि बोंम्बुर बॅ बॅ करान तिथय पाऽठ्य आयि शिष्यगण स्वामी जियन्यन चरणन शरण। रऽत्य - रऽत्य महात्मा तॅ महापुरुष यिम श्रीनगर यिवान आऽस्य तिम ति आऽस्य अमिस योगीराज राजॅ ऋष्य सुन्द मायि बोरुत, असवुन त' फुलवुन दर्शुन करिथ कृतार्थ गछान।
अऽथ्य समयस मंज गयि स्वामी जी भारतवर्षक्यन बऽडचन तॅ थदि पायिकि सन्तन हुन्द

दर्शुन करऽनि तॅ श्री रमण महर्षियस सऽत्य सपदुक म्युल तिहिन्दिसऽय आश्रमस मंज तिरुवनमल्लय। महर्षि जी ति आऽस्य यिमन बुछिथ स्यठा प्रसन्न सपदेमऽत्य । तोरॅ यिथ आऽस्य यिम पनॅजन शिष्यन मंज ति रमण महर्षि सऽन्दि बजरऽच तॅ थजऽरऽच्य वखनय करान। केंचि वऽहऽर्य कोऽर स्वामी जियन लगभग शेन रयतन पननिस बुंगलस नखय गुप्त वास। अथ समयस मंज लीछय यिमव संयम पूर्वक द्वादशकाली हेंज व्याख्या–क्रमनयप्रदीपिका। अमि ब्रोंह आऽसॅख पॅन्चऽह वऽहर्यसॅय अभिनवगुप्त जियिनि भगवद्गीतायि हॅंजि टीकायि हुन्द सम्पादन कोऽरमुत तॅ टिप्पणी लीछिमऽच। तव पत ओसुख कोऽरमुत साम्बपञ्याशिकायि हिन्दी अनुवाद।

गुप्त-वास पतॅ रूद्य स्वामी जी पनॅनिसॅय बुंगलस मंज बडॅवडनि शिष्य मण्डलियित शैव-शास्त्र परनावान तॅ सत्संग लाभ दिवान। यिम आऽस्य पनुन वोहरवोद बडॅ हर्ष तॅ उल्लास सॅत्य मनावान। अमि दोह आऽस्य शिष्य तॅ सम्बन्धी समान, नैवेद्य तॅ भजन-गायन करान। विदेश प्यठॅ ति ह्यतिन स्वामी जियस निश विशेष शोधकर्ता तॅ साधक यिञ। यिहुन्द त्याग-तपस्या तॅ भगवान् शिवॅ सुन्द लोल ओऽस यिमन बुछिथऽय तॅ यिमन निश केंह कालस बेहनॅ सऽयि फिक्रि तरान।

भारतवर्षस आजाऽदी मेलनॅ पतॅ लगभग दहि वॅहॅर्य बदॅलोव यिमव पनुन आश्रम। तिमव बनोव निशात बागस नखॅ सडकि नजदीख अख लोकुट मोकुट बुंगलहना। अथ छि कीवल चोर लोकुट्य कमरॅ दवुन पोरुन मंज। (हेरिमि जॅ रटिख पानस तॅ बनिम्यव मंजॅ थोवुख अख ब्रह्मवादिनी शारिका दीवियि खाऽतरॅ तॅ ब्याख दितुख प्रभा दीवी जियि यिम पत आऽस्य तिहिन्य दोयुम शिष्य बनेमॅत्य।) अथ जायि प्यव नाव ईश्वर आश्रम, युस बुनिक्यनस ति तति मूजूद छु।

ईश्वर आश्रमस मंज बडेयि कॉम। वुन्य तिन दूरि क्यहो नजदीख जायव प्यठॅ शिष्य प्रशंसक, साधु-सन्त तॅ आम लूख स्वॉमी जियुन नुन्दबोन तॅ खॉेश यिवुन दर्शुन करनि यिवान। यिहिन्द्य व्याख्यान ऑस्य रसिल्य तॅ वॉणी ऑसॅख मीठ। स्वॉमी जियन ओस पेरिस युनिवर्सिटी हॅंजि अकिस विदुषी श्रीमती लिलियन सिलबर्नि शैव-शस्त्रन हॅज जान दिर्चमॅच यमि सॅत्य तमि स्वदेश गछिथ पी एच डी डिगरी हॉसिल कऽर। सो अऽसअ वृद्ध अवस्थायि मंज ति स्वॉमी जियिन वछि वॉलिंजि गीत ग्यवान। पतॅ आयि ब्ययि ब्ययि विदेशी भक्त इंग्लैंड, कनाडा, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, बेतरि प्यठ यिमन स्वॉमी जियन खास प्रयम ह्युत तॅ तिहिन्ज अर्पण कॅर्मुच सीवा कॅरॅख स्वीकार। तिहिंदि खॉतरॅ ऑस्य विशेष व्याख्या अंगरीज्य भाषायि मंजॅय करान यिम तिमव कैसेटन मंज रिर्काड थॅव्य करिथ।

स्वॉमी जियुन जा दोह ह्योतुन वॅडिस पयमानस प्यठ मनावनॅ युन। अमि दोह ऑस्य स्वॉमी जी पतिम पहरॅ प्यठॅय समाधि-निष्ट रोजान। बोंड लंगर ओस लगान तॅ सारॅ बॅद्य लूख

ऑस्य भोजन-नैवेद्य करिथ कृतकृत्य सपदान।

वरियस मंज ऑस्य ह्यि फिरि कशीरि हॅंदिस कुनि तीर्थस या कुदरतचि कुनि सुन्दर जायि यात्रायि या एक्स्कर्षन मनावनि गछान। कुनि ऑस्य दोहसॅय मंज वापस यिवान। बस टिकट ऑस पनॅञ पनॅञ दिञ आसान। कुनि ओस स्वॉमी जियस सॉरिय शिष्य ह्यथ निमन्त्रण कॉसि भखॅत्य सुन्द आसान तॅ द्वन-त्र्यन दोहन खॉतर ऑस्य सत्संग तॅ सत्-शास्त्रचिय पॉर्यजान करान। खास करिथ ऑस्य स्वॉमी जी उत्पलदीवॅञ शिवस्तोत्रावली मंज रसिल्यन श्लोकन हॅन्द्य नव्य नव्य अर्थ समझावान - वनान ऑस्य पर्नॅनि सोन्दर तॅ असॅर्वॅनि मुखॅ—अज वनोवॅ 'लेटेस्ट' अर्थ। प्रथ श्रावणॅ पुनिम दोह ऑस्य दरबाग (जम्मू कश्मीर राज्यकिस भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री रामचन्द्र काक सॅनिदस बुंगलस मंज) यिथय पॉठ्य स्वॉमी जियस अॅन्द्य अॅन्द्य बिहिथ दोह सफल करान। वाय। तिम दोह कति यिन फीरिथ वॉञ। प्रथ आथवारि ऑस्य स्वॉमी जी गुप्त गंगायि प्यठ शैव-पाठिकायि मंज शिष्यन तॅ साधकन शैव-शास्त्र तन्त्रालोक तॅ भक्तिशास्त्र परनावान। अति ऑस्य समयि समयि सन्त सम्मेलन तॅ परमार्थ गोष्ठियि करनॅ यिवान। कुनि कुनि ओस व्याख्यानन हुन्द क्रम ति चलान। अवॅ खॉतर ओस डॉ० कर्ण सिंह जी संजि आज्ञायि सॅत्य धर्मार्थ ट्रस्टन अख बॉड हाल तॅ जॅ कमरॅ बनावनॅव्यमॅत्य

अथ समयस मंज म्यूल स्वॉमी जियस जम्मू व कश्मीर कलचरल अकादमी हुन्द सम्मान।

सन् १९६३-६४ मंज छप्यव गोर्डॅनॅन्कि लटि स्वॉमी जियुन कोरमुत उत्पलदीवनि शिवस्तोत्रावली हुन्द अख मॉलूल हिन्दी अनुवाद।

सन् १९६५ मंज आव बनारस चि संस्कृत यूनिवर्सिटी मंज अखिल भारतीय तन्त्र सम्मेलन बुलावनअ। अथ सम्मेलनस मंज कॉर स्वामी लक्ष्मण जुवन 'कुण्डलिनी विज्ञान रहस्यस' प्यठ संस्कृत भाषायि मंज व्याख्यान। यि बुजिथ गयि अति समेमॅत्य थदि पायिक्य विद्वान् स्यठॅहॅय प्रसन्न तॅ महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज हिव्यय दॉनिश्वरव द्युत स्वॉमी जियस थद्य थॉद सम्मान। केंचि वॅहॅर्य पत कऽर अमिय यूनिवर्सिटियि स्वॉमी जियस डी. लिट डिग्री प्रदान। यि बूजिथ कऽर तिमव असनहना तॅ बस।

डॉ० कर्णसिंह जी ओस स्वॉमी जियस निश कुनि कुनि अलग पाठ्य दर्शन बापथ यिवान। भारतॅच भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ति आंस गुप्त पाठिच्य यिमन प्रणाम करॅनि यिवान।

स्वॉमी जियुन बजर तॅ यूगॅबल क्या ह्यकव वनिथ। यिमन ब्रोण्ठकनि बिहिथ या यिहिंजि नजरि किन्य या यिहिन्दि स्पर्श सॅतिय ओस गछान यि दपिजि जि सोरुय संसार मशिथ। यिम रॅत्य सन्त यिमन निश आमॅत्य ति आऽस्य नॅ तिमति आऽस्य यिहुन्द बजर वखनान। केंह ऑऽस्य वनान जि यिम छि पर्नॅनिस यूग-सिद्धियन हॅन्दिस खजानस कुलुफ थविथ

रअछअ करान। पोंज ति छु। करामऽच आऽस्य नॅ यिम करानॅय। यिहिन्दि हॉजिरी मंजय आंऽस दाद्यन दवा तॅ इछायन पूर्यर सपदान। यमिस कांऽसि पजिच त्रेश ऑस सु ओस यिमन वुछिथऽय तृप्त सपदान।

सन् १९८८ प्यठ् रूज स्वॉमी जियस ज्यादॅ मस्तान चाल। गराह आऽस्य नॅ ख्यवानॅय, गराह आऽस्य न्यर्थनोनुय रोजान, गराह छोंप करिथ रोजान।

फर्वरी १९९१ सपज ब्रह्मस्वरूपिणी शारिका दीवी शिवस्वरूपस मंज लीन। जमिस मन्ज तिहुन्द यथा-योग्य कृत्य करॅनॉविथ गयि कशीरि वापस। पतॅ गयि विदेशी भक्तयन हंजि प्रेरणायि सॅत्य अमरीका। स्यथ जोराह रूद्य तति स्यठा मस्त। शरीर गव कॆंछा अस्वस्थ। आयि भारत। मेडिकल इन्स्टिटूट प्यठ यलाज करनॅ पत गयि नोयडा। तति रूद्य अन्तर्मुख तॅ २७ सितम्बर १९९१ दोह सपद्य शिवस्वरूपस सॅत्य लीन। ग्युसॅ कॉम अऽम्य महापुरुषन पर्नॆनि सोन्दर तॅ पवितॅर जिन्दगी मंज परमार्थ खॉतर, साहित्य खॉतर तॅ समाजि खॉतरॅ कऽर सो छे थ्यकनस लायख। गुरु महाराज करिन सारिनय कल्याण।

सौजन्य :–
संत समागम शोध संस्थान
३७/४, पड़ोका कालोनी, पलौरा
जम्मू – १८११२१

त्रिधारा

मेरे सद्गुरु के चरण प्यारे प्यारे

श्रीमती नैना सपरू–त्रिछल
'18th March 1977'

मेरे सत्गुरु के चरण प्यारे-प्यारे सारे जग सारी दुनियाँ से न्यारे
जो भी आता है सुख पाता है॥
इनके चरणों की महिमा गाये तो गाई न जाये गंगा यमुना से पावन
यह चरण कमल कहलायें ऐसा चरणों का प्रताप
धोये पापियों के पाप आये काग तो हंस बन जाता है॥
लोहे को सोना करदे पारस ऐसा होता है
इन चरणों को छू ले जो बन्दा इनके जैसा होता है
ये हैं चरण महान, डालें मुर्दे में भी प्राण

है वह धन्य शरण जो आता है॥
इनके चरणों की धूली बन्दे को देवता कर दे
इनके चरणों की धूली कंकर को हीरा कर दे
हाँ जी सच्ची है ये बात बोलूँ दिन और रात
सच्च जान के दिल यह गाता है॥

सद्गुरु भासतम हन्य हन्य

16th April 84

पम्पोशि पाद च्यन्य रटहय मंज मञि,
सत्ग्वोर बासतम म्ये चृई हनि - हनि॥
यिमय पाद लगनअ् सृत्य, कॅन्य सपदेयि नार अदअ् भवसरसई लोगुसना तार
तिमय स्वोनऽ पाद च्यन्य रटहय मंज मनि॥ सत्ग्वोर बासतप॰
यिमय पाद छलिथ राम नौकाय खोरुन ग्वोड्य वादअ ह्युतनस अदअ् तार तोरून
अन्तसमयस म्यं तार दिज्यम दक्षिणायि कनि॥ सत्ग्वोर बासतप॰
मायायि न्यन्दरे छस वुजनावुम घटअ् कासुम गाश प्रजलावुम
यिनऽ पगाह प्यठ त्रावख, छसय ब्रोंठअ कनि॥ सत्ग्वोर बासतप॰
आसवुन छुख पानअ् काल-संहारी ज़अरी करान छि चेयि कुन सऽऽरी
गाल पाप त्राव असवनि नजराह वुन्य॥ सत्ग्वोर बासतप॰

मुख हावतम दुबारो

हा भस्माधारो म्वोख हावतम दुबारो॥
रटहअथ नालमते वनतो छुख च कते
वोन्य कोताह ब प्रारो॥ मुख हाव॰
छअ्र्य-छअर्य गायिसय बो खार छुइना यिवान क्याजि आर
दादि च्यानि गयस मारो॥ मुख हाव॰
क्याह गुदअ्र्योम भावय सीनऽ मुचऽरिथ हावय
बलहा बअ् बेमारो॥ मुख हाव॰
ग्वोड़ दिमय अशिवाने अकि लअ्टि रोज् साने
केन्छा करतअ् चारो॥ मुख हावतम दुबारो

सद्‌ग्वर सुन्द ज़न्म

अनुपम कौल

ॐ

जय गुरुदेव॥

स्तोतुं त्वां कः समर्थोऽस्ति प्राणबुद्धिप्रवर्तकम्।
किन्तु प्रभोः प्रसादार्थे ममैतद्वाग्विजृम्भणम्॥ (गुरुस्तुतिः ५०)

अद्वैते प्रथितं समीक्ष्य रुचिरे वैज्ञानिकैरर्चितं
शिष्यैः साधुभिराश्रितं प्रणमितं सुज्ञैर्मुनीन्द्रैरपि।
केसरकुंकुमभूषितं गुणनिधिं संख्यावतां सद्‌गुरुं
तं वन्दे श्रीलक्ष्मणं नरहरिं सच्चित्सुखं देशिकम्॥ (कमल)

"Salutations to venerated Lakshmana—
The treasur of qualities,
Who evinced great intelligence,
For investigating the Supreme Truth,
Resorted to by willing disciples,
And adored by proficient men of thought;
Lion among men,
Revered by the conversant and enthusiest,
A good preceptor of the learned,
With kum-kum kesar anrointed on forehead,
That Supreme Spirit of Joy;
The Spiritual Teacher."

तमिस फोलिमुतिस तु दयु लोलु भरितिस सद्‌गुरु स्वामी लक्ष्मण जुव महाराजस छु सोन लोलु भाव भोरुत गुल्य गन्डिथ नमस्कार, यिम सद्‌ग्वणनो हेन्द्य भण्डार, ओस्य यिमन बडि-बंडिस पर्जुनावुनुच सूक्ष्म ब्वुद्ध ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त ओंस तु यिम शाम्भवोपाय स्यद्ध यूगी आस्य। सत्शिष्य यिहुन्ज वन्दना करान रोजान द्दे तु गाटल्य विद्वान यिहुन्ज पूज छि करान, यिम मनुष्यन मंज सुह - सुन्जि चालि आंस्य, यिम परमार्थ पथिकन हन्द्य रुत्य वतहावक आंस्य, यिम पनुनिस डचकस प्यठ क्वोंगु ट्युक धोरिथ प्रजलवत आंस्य तु पानय शिवु - रूप आसिथ परम आनन्दुक बोड-बारु खजानु आस्य।

यिथिसुय सन्त - यूगी सुन्द दर्शुन छु मोलुल तु प्रयवुन। शिवस्तोत्रावली मन्ज छि उत्पलदेव वनान यथ श्लोकस मन्ज—

कर्हि नाथ विमलं मुखबिम्बं

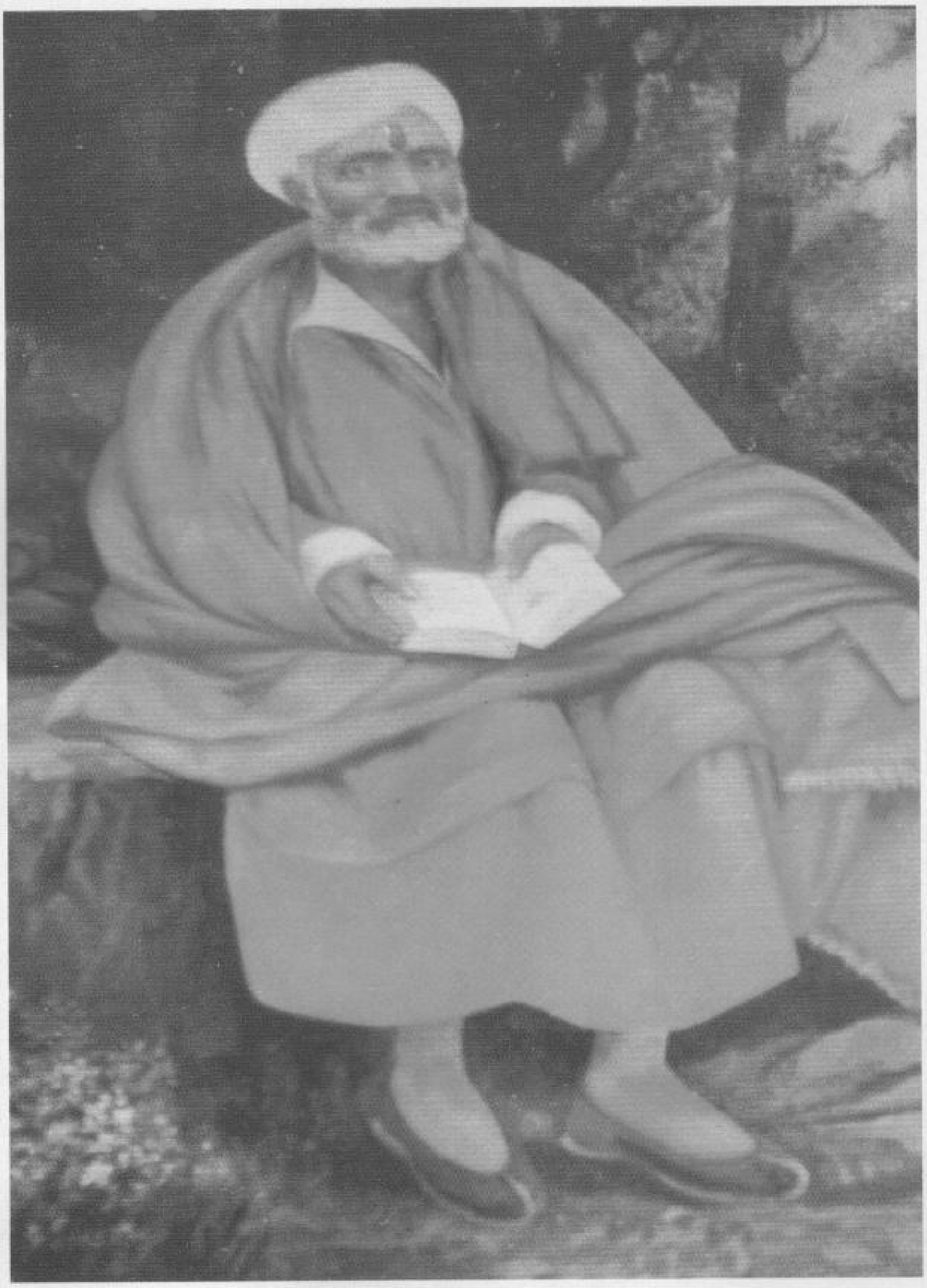

स्वामी जी के परमगुरु
सिद्ध शांभवयोगी श्रीराम

तावकं समवलोकयितास्मि।
यत्स्रवत्यमृतपूरमपूर्वं
यो निमज्जयति विश्वमशेषम्॥ (६/१९)
कांशिरिसि मंज छु यि 'कमल' सांबन यिथु पोठ्य व्यछ्नोवमुत–
कर सना ही नाथु। मोखुबिम्ब निर्मल
चोन वुछ चाने अनुग्रह सुत्य।
यमि प्यठ् रड़ वसि अमर्यतु वर्षुन
सोर संसार बोडि म्य ह्यथ सुत्य॥ (श्रद्धा-पोष)
शैव-शास्त्रस मंज छु शाम्भव उपाय अख थोद उपाय मानन् आमुत यम्युक बज़र 'पञ्चस्तवी' मंज छु यिथु पोठ्य व्यछ्नोवमुत–
ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याद्यन् व्याद्यन् शययति सुखानि प्रतनुते।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न करुते॥ (३/१३)
भक्त-साधकस यलि, शाम्भव उपाय किञ, वुज़मलि ह्न्द्य पांठ्य, पराशक्ती परा अम्बा भगवती हुन्दि फोलुवुनि तु प्रजलवुनि स्वरूपुक अनुभव छु सपदान, सो छि पानय–
i) तमिसुन्द्य सारिय कांछिमुत्य यछायि पूरु करान
ii) तमिसुन्द्यन सारिनी शत्रुन हुन्द नाश करान्
iii) तमिसुन्ज़ु सारेय आपदायि दूर करान
iv) तमिसुन्द्य सोरुय मल जालान
v) तमिसुन्दि मनुच आज़ तु शरीरु च व्याध कासान
vi) तमिसुन्द सोखु साधन गोशरावान यन्य किञ सु रडटच-रोस परमार्थ पथस प्यठ छु पकान रोजान
vii) तमिसुन्दि मनुचि वासनायिन हुन्द छि मूल प्राटान
viii) तमिसु प्यठ अनुग्रह रूप किञ अख त्युथ सबब करान यमिकिञ भक्त-साद्यक-जीवस छु परमात्माहस सुत्य म्युल सपदान तु क्रेशुवुन छु नु जांह ति रोजान;
अमाह पोज सु कुस चीज छु युस नु मोज्य भगवती यिथिस भक्तिस बखशान छि। पंज्य पाठ्य छि पराशक्ती माता भगवती अमिस साद्यकस नारु द्राव सोन बनावान।
भगवान् शिव सुन्दि अनुग्रह किञ सपुद लगभग अुठिमि शताब्दी मंज कशीरि हुन्दि शैव-दर्शनुक आविर्भाव। आचार्य वसुगुप्त सुन्दि जरियि वोत्य असि ताम 'शिव सूत्र'। आचार्य सोमानन्द तु आचार्य उन्पलदेवन व्यच्छनोव 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' तु पायि बंडच

आचार्य अभिनवगुप्तन शूर तु पूर यि शैव-दर्शन पनुनिस मोलुल मीरास 'तन्त्रालोकस' मंज युस जन कश्मीर शैव-दर्शनुक Encyclopaediaछु मानन् यिवान। यिहिन्दि पत् आयि ब्ययि ति स्यठा आचार्य यिमव शैव-दर्शनुक्य ग्रन्थ पनुञव मोलुल्य टीकायव दंस्य व्यछुनाव्य। यिम आंस्य क्षेमराज, जयरथ, योगराज, वरदराज, मधुराज बेतरि यिहिन्द्यव लिखिति सुत्य सोरुय शैव-साहित्य गाशरावन् आव। तमि पत् स्यठहि कांल्य लगभग चोदंहिमि शताब्दी मंज आयि परम योगेश्वरी लल्ल-द्यद तु तव पत् अलक्षेश्वरी रूप-भवांञ। अमि पत् रूज स्यठाह कालस ताञ छोपय मगर यि छोपु रेह रूज चलुवंञ। लगभग अरदाहिमि शताब्दी मंज तुल शिवोपाध्याय आचार्यन अद्वैत शैव-दर्शनुक दस पनुञ केंह ग्रन्थ लीखिथ तु अम्युक प्रचार करिथ। विज्ञान-भैरवस प्यठ अंडुय लीछिमुच़ क्षेमराजुञ टीका वातुनोव यिमव अन्द। कुनुवुहिमि शताब्दी मंज द्रायि श्रीनगर शहरस मंज दयि लोलु भंरित केंह शैव-सन्त लूकन तु भक्तगन हुन्द उद्धार करनु बापथ नंञ यिमव मंज ईश्वर जुव शायिर, लालु जुव क्वकुर तु मानु काक मोंगु आयि स्यठहुय रुत्य गन्जरनु। यिमव कोर भक्तन् मंज अमि दर्शनुक व्याख्यान तु केंचन साधकन कंरुख वोपुदीश तिं यिमव करं साधना तु मौखिक प्रचारुय योत मगर ल्यूखुक नु केंह ति।

अथ्य समयस ओस चिन्क्राल महलु श्रीनगरस मंज अखरुँत ब्राह्मुण शुकदेव पनुनिस परिवारस मंज रोजान तु श्रूच्य पोठ्य पनुन व्यवहार पकुनावान। सनु १८५२ ईस्वी संवतस मंज जाव अमिस बालुक। टेकिञ आयि गंडनु तु रुत्यव ज्योतिषव वोन जि यि बनि ब्रोन्ठकुन अख स्यठा गाटुल त महान सन्त।

यि बालुक ओस राम जी वारु वारु बडच्यव यि तु पनुञ मांल्य हंछिनोव ब्राह्मणाज्य करुञ। जवान सपुद तु यूगु तीज ओसुस सुत्य - सुत्य। पनुञव रत्यव संस्कारव किञ तु परमार्थ यच्छायि किञ ह्योतुन लालु जुव कोकरू हस निश शैव-शास्त्र मन्दुन। रुच बुद्ध आंसुस तु असुलुच कथ प्ययस पलि। पजर छु यिय जि यलि पानस मंज पजुरूक लोल आसि घन्योमुत, आदनबोज नुन्दुबोन छु पानय वतिहावक सुन्दिस रूपस मंज यिवान।

पननि समुयिक्य कोशुर शैवदर्शनिक कुल सम्प्रदायिक्य मानिमुत्य पैरवकार आंस्य अख रुत्य सन्त मनस राम मोंगु। मनु काक ओस्य यिमन टाठ्यन्यार सान बनान। परमार्थ वति हंन्द्य स्यद्ध पुरुष अंसिथ आंसख मनुच यछा जि यि शैव दर्शन गोछ ब्रोंठकुन शिष्य परम्परायि दंस्य पकुन। यिमव कोर पनुनिस न्यचिविस शास्त्र परनावुन शुरू मगर तमिस सार्यव नु किहिञ। राम जी ति आयोव अमिस शरण मगर तमिस सपुद इन्कार। मगर राम जियस आंस तीव्र इच्छा यि शैव-शास्त्र परुनुच। सु ओस चूरि-छंयपि मन काक जियुन गछान क्याजिकि कलु आंसुस स्यठा गनेमुच। अति ओस यि म्यचि खतिस मन्ज ब्यहान तु मनु काकुन व्याख्यान बोजान युस सु पनुनिस न्यचिविस ओस दिवान आसान। अकि

दोह छु अंथ्य वयाख्यानस मंज मनु काकस जल-मल यिवान। श्रोचाचार ह्यनु बावथ छु यि म्यचु कडनि गछान अथ खतिस निश । म्यच कडान कडान लोग अमिस पनुन अथु रामजियिनिस खोरस सुत्य मगर मनुकाकन च्यूनुय नु केंह ति। हुपोर्य द्राव राम जी खति मंज यकदम तु प्यव अमिस परन तु मंजिनस मांफी। 'चु क्याह छुख यति करान'—पृछुनस मनुकाकन। रामजियन वोनुस — 'माहराज! तुहि कोरुवुना म्य शैव-शास्त्र परनावनु निश इन्कारं अमिय ओसुस यथ खंतिस मन्ज तुहुन्द व्याख्यान बोजान।' अमिस मंज यिछ ज्ञानुच तपिश बुछिथ गव सु हर्षस। पृछुनस जि बोजनाव म्योन व्याख्यान। राम जियन बोजनोवुस पुरु पोठ्य स्यदि-स्योद सोरुय। यिथु पोठ्य सपुज मनुकाकस पनुञ कांछिमुच यछा कबूल तु राम जी संन्दिस रूपस मन्ज म्यूल यिमन अख रुत, पोजु तु गाटुल शिष्य यमिस यिमव स्पर्श-मात्रु सुतिय शक्तिपात-अनुग्रह क्वुर।

मनुकाकु संन्दि वोणी मन्जु द्रामुतय यिम मोक्त बूजिव तोह्य ति—

''पराकाशलहरी पारमेश्वरी
षोडशकला भाव दांरिथ
पंचदशकला कालमञ्जरी
क्रीडारस सुत्य सगनांविथ
ज्ञान क्रिया संन्दि हस्तेन
यामल पीठस पूजि लागुवुञ
परेशस सांनिस देवालयस
यंहय अर्चन छस स्वाभाविक''

वोञ ह्योत रामजियन पजि मनु तु लोलु सुत्य योगाभ्यासस कुनुय पनुन समय द्युन। सुत्य सुत्य आंस्य संसारुक लोह-लंगर ति चलावान तु घरु-बार ति करान रोजान यिम बनेयि वोञ योगारूढ तु नचुन-फेरून ह्यतुन वारु-वारु बन्द गछुन।

दैवगथ कंम्य जांञ तु कुस जानि। दपान छि अख खतरनाक भुञुल आव तु स्यठा जांनी तु मांली नुंक्सान गव। अंथ्य मंज सपुद्य रामजियिन त्रिय तु न्यचुव मारु। मन सपुदुस दुःखी। यिमव सूञ्च जि दैवस ओस यिय मन्जूर तु द्युतुख वोञज्यादय ध्यान पनुनि योग-साधनायि कुन तु अद्वैत शैव-दर्शन जाननु बापथ वोञ आव समय यिमन खलक नशीनी हुन्द यिमन ओस तमि अकि एकान्त जायि हुन्द जरूरत यति यिम समांज मंन्ज कुनि ति समयि बापथ रोजहन तु कांह ति करेहनु तंग। सफाकदल दिचुनख पनुनिय गोरु-भोय पनुनि घरि जाय तु बेहनोविख आदर-सत्कार सान। अति रूद्य केंचन वरियन तु बनेयि अख पपेमुत्य स्यद्ध यूगी। रुत्य जाननवाल्य लूख ह्यतिन ओर दर्शन बापथ यिञ। गाटुल्य विद्वान तिु ह्यतिन ओर दर्शन बापथ यिञ। ति ज्ञान प्रावनि यिञ आम लुख ति आयि ओर पनुञ दांद्य-कांगरि

भावुनि तु पनुञ दुःख निवारन करुनि स्वामी राम जुवन च्यून जि अति ह्यचुन परिवारस मंज तंगी यिञ। यिम द्रायि अति तु स्युद पांठ्य गयि पनुनिस अकिस स्योद-साद्य, गाटुल तु गम्भीर, ओसूदहाल यजमन पंडित नारायणदास रैना हस निश नमचिबल फतेहकदल। अकि दोह सायं - कालस युहुन्द घरु वांतिथ कोर यिमव यिहिन्जि दारि ठुक-ठुक तु वोनुहोस–"नारान जुव। नारान जुव। बु छुस यछान एकान्तस मन्ज ब्युहुन। क्याह तोह्य दियिवु म्य यित्य जाय रोजनु बापथ? नाराणजुव सपदेयि प्रसन तु यि स्यद्ध-यगी बेहनोवुख स्यठा आदर-सत्कार सान। पनुनि घरि नखय ओस यिमन अख त्र्यपूर मकान तु अमिकिस दोयिमिस पोरस मंज बेहनावि स्वामी राम जी स्यठा व्यनयतणय सान। यि पोर ओस गोड़ प्यठय श्रोचि-श्रानि शीरिथ परिथ आसान। अतिय ह्योत वोञ रामजियन पनञ साधना-तपस्या एकान्तस मंज करुञ तु अंतिय द्राव यि फोलुवुन सन्त नोनं यि जाय बनेयि अख बंड-बारु साधना-स्थल तु ओतुय वोत्य यिहिन्द्य गाटल्य शिष्य स्वामी महताब काक जी, स्वामी विद्याद्यर जी तु स्वामी गोविन्द कौल जी यिमव गुरु से वाकरिथ यिमन निश शैव-शास्त्रुक ज्ञान प्रोव तु शिष्य परम्परा थंवुख ब्रोंठकुन जांरी। अथ आश्रमस प्यठ आंस्य ब्ययि ति स्यठा लूख गृहस्थी, बंडच क्योह लोकुटच यिवान रोजान तु सन्त-दर्शन कंरिथ आनन्द प्रावान। पनुञन पंतिम्यन वरियन छे स्वामी राम जी अंकिसुय आसनस मंज पनुञ कोठच जु पनुनिस वछस सुत्य थविथ रूदिमुत्य । अमि काक आसनु प्यठ छि न तिम वुहन वरियन हिलेमुतिय। अंथ्य समयस मंज छे यिमव पनुञन शिष्यन तु सीवुकन योगाभ्यासह्यछिनोवमुत तु त्रिक दर्शनुक व्याख्यान दितुमुत। यिम आंस्य अक्सर चांन - चांन घण्टन समांज मंज रोजान। समांज मंज अचनु ब्रोन्ठ ओड घण्टु गोछ नु अति कुनि ति कुस्मुक शोर-शार आसुन पत समांज मंज अचिथ अगर अति नगारु ति बजुहन पतु ओस नु कांह ति असर आसान।

महाराजा प्रताप सिंह आंस्य विजि-विजि युहुन्द दर्शन करुनि बापथ यिमन निश यिवान। वनान छि जि परमहंस रामकृष्ण जी महाराज संन्द्य सत् शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ति छि 1898 ई० मंज स्वामी राम जी महाराज सुन्द दर्शुन कंरिथ आनन्द-विभोर सपुदेमुत्य।

पनुनि आनन्दकि अखण्ड मस्ती मन्ज ओस्य कुनि विजि रामजियिनि मोख मन्जु परब्रह्म सुन्द्य अनुभव भक्तयन कनन गछान। वलिव तिहिन्दिवनिमुत्य जु श्लोक बोजव–

मोहः शान्तो गुरवरमुखामाय तत्त्वोपलम्बाद्
मग्नं चेतः समरससमास्वादलोलं चिदब्धौ।
भावव्रातः प्रशममगमन्निर्विकल्पे समाधौ
सिद्धाभासः स भवति हि मे कोऽपि संविद्विकासः॥

सान्द्रोद्वेगात्क्षुभितमभितः स्वान्तमन्तर्नियम्य
प्रायो दत्ते नवनव रसोल्लेखमानन्दकन्दम्।
भूयो भूयः प्रलयविभवोद्धामदुःखान्तरायो
योऽसावन्तर्जयति हृदये कोऽपि संविद्विकासः॥

'पनुनि ग्वरु सुन्दि मोख यलि म्य पजुरुक रहस्य जोन, सुय मोन म्य रुत तु ह्युत, सुय ओस शास्त्रुक प्रमाण ति। अदु सपुद म्योन अज्ञान यानि मोह-अन्धकार दूर। म्योन च्यथ सपुद ह्यसकिस अथाह् सागरस मंज ग्रोतु ग्रोतु करनस मंज लीन तु ब्यूठ अमृतपान करुनि। संकल्पशून्य गछिथ रूद घ्यानुय योत। यिथु पठिच सपुद म्य संवित् - व्यकासुक पूरि-पूर अनुभव।'

पंडित नारायणदास रैणा आंस्य गाटुल्य तु गम्भीर पोरुष। यिमन ओस्य छोटच पांठ्च नाराण जुव ति वनान। 'नावु नाराण' किञ ओस्य यिम अवु मोख मशहूर जि यिमुवय ओस कशीरि मंज गोड्न्यथुय नावु तु हाउसबोट रयिज करिमित्य। हाउसबोट बनावनुक अख बोड-बारु कारखानु ओस यिमुवय शुरू कोरमुत। घरि ओस्य यिमन टाठयन्यार, सान 'काक' वनान। यिहुन्ज अर्धाङ्गिनी ओस श्रीमती अरिणिमाल यमिस टाठयन्यार सान 'द्यद' आंस्य बनान। दुशवय बांच आंस्य दयि लोलु भंरित्य तु पनुन घरु-बार तु व्यवहार जान पोठच करान। श्रूच्य पोठच रोजान तु अमिस स्यद्ध योगी स्वामी राम जी महाराजस ति अलौकिक सेवा करान। अरिणिमाल ओस प्रथ दोह प्रभातन स्वामी राम जियिनिस आश्रमस प्यठ गछान तु तति ब्रान्द - फश दिथ इजाजत ह्यथ वापस पनुन घरु यिवान। अकि दोह छि इथय पोठच ब्रान्दु-फश दिथ स्वामी राम जियस निश इजाजत ह्यनि खंचुमुच। स्वतः हंय कोरहस अनुग्रह तु वोनुनस–'बु छुस राम तू च्य गोय लक्ष्मण।'

स्यठाह काल गुजस्यठ। अरिणिमाल रूज गोबि खोरु। अथ्य वक्तस बुलोव रामजियन नाराणजुब तु वोनुनस– तोह्य करुनोविव 'हाउसबोट' तैयार तु सांरिय नेरव अथ्य मंज चकरस।' अरिनिमालि ति वोनुन जरूरी यिनु बापथ। गोबिखोरु आसन मोखु मोन नु तमि केंह ति। ब्यय ओस तमिस अमिय यतु वक्त आमुत। रामजियन मोन नु कीहिञ ति। बखंलस आव बुठनु। रामजियन दोप यिमन अति जि वारे-ञ यस नाव ओस खांत, माहमद सुच युस बचस बापथ नंव्य पलव सुवि – तुल्यूख सुत्य। ब्ययि तुलिव हुर्य ल्येज, घासु तु वापुर बेतरि सोरुय सीद्ध-सामानु सुत्य। द्यद सपुज परेशान तु खूच तु काकस कुन बोनुन–"वोञ क्याह करु बु ? रामजी हुनु कीहिञ ति मानान। दपान छुम म्योन युन छु जरूरी।' काक वोथुस – 'अथ क्याह छु खोचुन। यिथु पोठच तिम बनान छे, तिथय पांठच कर।' बस यूतुय बनुन तु सोरुय तैयारी सपुजु। सोरुय सीद्ध-सामान आव तैयार करनु तु ख्यनु-चनुक इन्तिजाम ति सपुद्यव। घरु-बार ह्यथ द्रायि सांरिय रामजियस

सुत्य वोञ चक्करस।
चिथुरुकिस पूरु र्यतस रूद्य घरि न्यबर तु घरु गछनुक ह्योतुख नु नावुय। वहिकुन र्यथ ति चाव। द्यद ओस अन्दुरि - अन्दुरय परेशान तु घर गछनु बापथ ओस स्यठांहय बेताब। आंखुरकार वांत्य सारिय घरु वापस वहिकु घट्पछ कांश दोह। युथुय जन द्यदि त्रोव पनुनिस घरस मंज कदम तु तमिस संपुद दोद शुरू। रात्य रातस कोरून दोद बरदाश। दांयिमि दोह युथुय संगरमालु फोल्य, स्वामी रामजियन बुलोव नाराणजुव्ञ ज़िठ कूर सम्पकुज यमिस जिगुर आंस्य वनान, पानस निश। अंमिस निश कोरुख द्यदि हुन्द हाल पताह। मगर घद आंस बुनिति दोद ललवान। तम्यु पतु वोनुख जिगरि पानस
निश व्युहुन तु दिचुनस लायि चारनु बपथ जिगुरि ओस नु पनुन मन डंजि मगर बीठ लायि चारनि। पानु बीठ्च राम जी पश्मीनुक दुसु कल् नल् वलिथ। मंजु गव केंह काल तु न्यूख कलु प्यठु दुसु तुलिथ। तु अतिकिस नौकरस दिचुख वडि क्रख तु वोनहस–'चु गछ बाजर। तोरु अन सति कुसमुक चरवण। मगर यि थविजि याद युथ नु यि तूलिथ अनख। यूतुय मेलिय त्यूतुय अनिजि। यि रनिजि। सुत्य सुत्य बनांविजि अख दीकचि तहर तु अख दीकचि क्षिर। तमि पत अनिजि थालन मंजु शीरिथ म्य निश।'' सोरुय आव अमिय आज्ञाय किनिय करनु। बरिथ थाल आयि यिमन ब्रोन्ठकुन थवनु तु यिम त्रेशिवय चीज ख्ययख। अंकिस थालस मंज यि केंह बचव सु सूजुख जिगुरि अथि द्यंदि ख्यनु बापथ। द्यदि कोर ख्यन निश नकार। किथु ताम बूज यि रामजियन। तिमव दिच तति प्यठय द्यदि कुन क्रख – 'क्याह छख बनान ? दपुस यि ख्ये सोरुय। यि छस अख खास औषध।' तवु पत ख्यव तमि यि सोरुय। जिगुर आयि वापस रामजियस निश। अति वोनुनस ब्ययि लायि चारन तु पानु बीठ्च कलस प्यठ दुसु वलिथ केंह कालु पतय तुलुख कलु प्यठु दुसु तु जिगरि वोनुख द्यंदि हुन्द हाल वुछिनु बापथ जिगुर आयि वापस यि शंछ ह्यथ जि द्यदि द्युत बालकस जन्म। यि दोह ओस वह्यकु घटपछ बाह यानि ९ मई १९०७। अज बाह वरी ब्रोंठ २२ अप्रेल १९९० द्रोह ओस 'कमल' जियन अमिय वहिकु घट्पछ बांश दोहुक सुन्दर शब्दन मंज यिथु पांठ्च वर्णन कुरमुत – 'अज छेना वहिकु बाह' लीलायि मंज –
वहिकु घट्पछु बाह। वाह् वाह् वाह् वाह्।
तीज क्याह् तु रूप क्याह। वाह् वाह् वाह् वाह्।
नुन्दबोन तु राहतिजोन सोदरु मंजु लोधुर सोन
ईश्वर-स्वरूप छु क्याह्।।वाह्०।।
नादु-बिन्द परजोन प्रकाशस विमर्शोन
शिव-शक्ति रूप क्याह् छ वाह्० ।।

दारि दारि बुद्दवोन जायि जायि आसुवोन
मायि वनि आव क्याह् ।।वाह्०।।
शिव-रूप आसुवुन जगत् रूप भासुवुन
तोता करस बु क्याह् ।।वाह्०।।
अद्वैत गाश सोन द्वैतु घटु कासवोन
शुद्धविद्या छुना ।। वाह्०।।
विकल्प-बोद्ध कासुवोन अहं मन्त्र शासुवोन
शाङ्करी पूर्णता ।। वाह्०।।
राजु-योष रानिठोन मनि मंज मोलुवोन
न्यबर कस वनु क्याह् ।। वाह०।।
लीलायि ललुवोन खोनि मंज हय सुलवोन
लक्ष्मण जुव म्योन ।।वाह्०।।
सत् शिष्य वन्दितो शारिका पूजितो
सर्व ऐश्वर्यदा ।।वाह्०।।
अंन्द्य अंन्द्य छिस समान अनुग्रह छिस मंगान
दियि न तु अदु क्याह् ।।वाह्०।।
लालु सोब ललुवोन पायि बोड मोलवोन
अज छेना वहिकु बाह
वाह् वाह् वाह् वाह्।। वाह् वाह् तु वाह् वाह्।।

तवु पतु वोन स्वामी राम जी महाराजन जिगरि –"गछ यि बालुक अनुन श्रान करिथ यूरच स्यदुय म्य निश।" केंह कालु पतय ओन तमि यि बचु शालस वंलिथ अमिस निश। राम जियन तुल यि बचु बालुक पनुनि कोछि मंज। पूरु आत्म मस्ती मंज यि बचु ह्यथ रूद्य पनुनिसि कमरस मंज लगभग अंकिस घण्टस नचुनि तु लग्य अकि लीलायि हंन्द्य यिम बन्द ग्यवनि–

घटु चऽज्य तु गाश आव चंनि ज्यनय
जय जय जय जय देवकी नन्दनय।।

आचार्य रामेश्वर झाहन क्याह सोन्दर पोठ्य छु 'गुरुस्तुतिः' मंज वर्णन कोरमुत युस अंस्य सांरिय छि अथ तोतायि मंज परान–

रामोऽस्म्यहं लक्ष्मण एष जात
इत्येव गायन् सहसा ननर्त।। (गुरुस्तुतिः ६)

"स्यठा वृद्ध अवस्थायि मंज ओसिथ ति रूज़ नु तिमन देह-बुद्ध किहिञ, तु हंग-मंग गयि

थुद वथित। वांनुख 'बु छुस राम तु यि जाव लक्ष्मण' तु लंग्य नचुनि।''
पतु यलि थंकिथ पथर बीठ्य तु यि बालुक रोटुख चीरु पांठ्य पनुनि कोछि मंज। कमजकम अडिस घण्टस बीठ्य अमिस कनस तल क्याह ताज्ञ परुनि। आश्चर छु यि जि अथ सोरिसुय समयस रूद यि बच्चु शान्त रूपस मंज। अमि पतु सूजुख जिगरि अथि पनुनि माजि निश वापस। द्वदि चोव यि दोह्य तु प्ययस न्यन्दुर। अमि पतय केंछि कोल्य गयि साधु वेशस मंज जु महात्मा यिहिन्दिस द्वारस प्यठ पांदु। तिमव रोट नु दान-दक्षिणा किहिज्ञ ति मगर वोनुख 'अस्य छे नविस जामतिस बालक सुन्द दर्शुन करुन यछान। असि होव्यतोन सु।' यिमन महात्माहन होवुख यि सुन्दर तीजुवान बालुक तु दर्शन केरिथ गयि तिम अदृश्य।
स्वामी राम जी ओस्य वुज्ञ अमिस बालक लक्ष्मण जियस दोहय सुबहन तु शामन पानस निश अनुनावान तु तमि पतु वापस पनुनि मातायि निश सोजान टाठ्यन्यार सान ह्यतख अंमिस लालु-सोब वनुन।
''प्रातःकालुक गाश आव फ्वलुनस। सिरी भगवानन् ह्यचु पनुनि जुचु बालु थंगयव प्यठ्य त्रावनि तु वारु-वारु गाशुरांवुख स्वर्गभूमि कशीर। मन्दुरन मंज आसु घण्टायि वजन सुत्य पूजा-पाठ बजि भक्ति-भावनायि सान सपदान। अख त्रि-बुहुर बालुक वुंथ न्यंन्दुरि तु लोगु पनुनिस घरस मंज ओरु-योर नचुनि। नचान-नचान प्येयस अचानकनुय पनुनिस जिठिस मयिस महेश्वर टोठिस कुन नजर यिम पद्मासनस मंज बीहिथ घ्यानमग्न आंस्य। तिमन आंस्य पंडित महेश्वरनाथ जी वनान। यिं बालुक ब्यूठ अमिस ब्रोन्ठुकनि तु लोग मुदय गण्डिथ अमिसुय बुछनि। कुस सना ह्यकि वनिथ जि अमि विजि क्याह आसिहे यि बालुक मनस मंज सोंचान। मगर ब्यूठ अछय वाहराविथ छुपु करिथ तु आश्चर्य मुद्रायि मंज। स्यठुहय बेसबर तु बेताब रूद पनुनिस सन्त स्वभाव मयिस केंह पृछनु बापथ। तंम्य योछ नु यि अमि विजि वुजुनावुन। मगर ब्यूठ पूर-पोठ्यशान्त भावस मंज। यिथु पोठ्य जन पम्पोशु वथुर छिफुलान तमिय चालि, केंह कोल्य, मुचुरोव महेश्वर टोठ्य वारु-वारु पननि अंछय। लालु-सोबन वुछ अमिस बड् लोलु तु मायि सान – 'भोय सोब। तोह्य क्साह ओसिवु चाटुकूट कंरिथ तु अंछय वटिथ करान? म्य बुछिमवु तोह्य पनुनि अथुकि न्युठु तु मंजिमि ओंगुजि सुत्य केंचस कालस नस रटिथ, ति।'
भोय सोबनं त्रोव अमिस कुन लोलु-ह्च नजुरेहना तु वोनुनस नु केंह ति।
लालु सोब ओस असुलुक तु पजुरुक मुतलांशी। तंम्य पृछुनस ब्ययि तु ब्ययि–' भोय सोब। तोह्य क्याजि छिवु नु म्य वनान? वनिव माहरा तोह्य कयाह आंसिवु करान।'
भोय सांबस लोग नु वोज्ञ केंह ति चार। तिमव वोनुहस–'बु छुसन परब्रह्म परमेश्वर वुछुन यछान, तवय छुस तंमिसुन्दुय घ्यान करान।'

स्यदुय वुनुस लालु-सोबन—'म्य ति हांविव ना।'
तिमव वोनुस—'ब्यह चाट्कूट करिथ।
पनुनि नस्ति प्यातिस कुन रोज मुदय गण्डिथ अंछयव सूत्य तु बुछहन पानय भगवान।'
लालु-सोब बीठ्य यिथय पांठ्य आसनस मंज तु वारु-वारु सपुद्य अन्दरु-अन्दरुय ध्यानस मंज पूरु पोठ्य मगन। न्यबुर्युम रूद नु केंह ति पय। कुनि ति हरकत वरांय अंकिसुय आसनस मंज बीहिथ। स्यठाह काल गव कुनि ति कुस्मुक स्वर-सदा छुनु। लालु सोब छुनु वुथानुय। पनुनिस आनन्द रसस मन्ज पूरि-पूर मस्त। शायद अमृत पान करान।''
यतिनस छु म्य आचार्य उत्पलदेव जियुन अख खास श्लोक च्यतस प्यवान युस स्यठा रसपूर्ण छु तु यंमिच वखनय स्वामी जी महाराज विजि-विजि आंस्य करान। असि आंस्य यि आनन्द दिवुवुन श्लोक गरि-गरि याद करनावान वलिव इकुवटु परव लोलु सान—
यो विचित्र रससेकवर्धितः। शंकरेति शतशोऽप्युदीरितः।
शब्द आविशति तिर्यगाशये—ष्वप्ययं नव नव प्रयोजनः॥
ते जयन्ति मुखमण्डले भ्रमन् अस्ति येषु नियतं शिवध्वनिः।
यः शशीव प्रसृतोऽमृताशयात् स्वादु संस्रवति चामृतं परम्॥ (४/१३-१४)
'स्वरूप समावेश के अनूठे आनन्द रस के सींचने से वृद्धि को प्राप्त हुआ और सैंकडों बार उच्चारण में आया हुआ जो यह 'शिव' शब्द पशुओं के समान (मूर्ख लोगों के) हृदयों में भी अपूर्व (चमत्कार के) प्रयोजन से युक्त (होकर) प्रस्फुरित होता है; और जो (यह 'शिव' शब्द) चन्द्रमा की नाईं अमृतमय कला से प्रसारित होता हुआ मधुर और उत्कृष्ट अमृत खूब बहाता है, वही (अचिन्त्य महिमा से युक्त) शिव-ध्वनि जिन (भक्तों) के मुखमण्डल में निश्चित रूप से घूमती रहती है, वे ही धन्य हैं।'
स्वामी जी महाराजनिय महान् भक्त-सन्त श्रीजानकीनाथ जी कौल 'कमल' जियन छु अम्युक भाव कोशिरिस मंज यिथु पोठ्य फचुरुमुत —
'कमिताम आनन्दु रसु सुत्य सोगुमुत शिवनाव हति फिरि यस ज्यवि द्राव।
घरि घरि युस मूर्ख-हृदयस मंज ति चाव चित्-चमत्कारु किञ फोलिथुय द्राव॥
युस हा शिवु-नाव शशिकल व्यगुलोविथ अमुर्यत कलायि हुन्द रडु ह्यथ द्राव।
सुय शिवु-नावि युस अचिन्त्य महिमा सोस्त यिमन भंक्त्यन मुखस तिमन छु जयकार॥'
स्यठाहस कालस ताम लालु-सोबुन कुनि हरकच-
वरोय तु बेह्यस ह्यू सपदिथ रोजुन वुछिनु सुत्य सपुद्यव अकि तरफु महेश्वरनाथ जियस आश्चर मगर दोयमि तरफु गयि स्यठा परेशान यिमव सूंच नु मुनोसिब यिथिस शान्त तु शीतल स्वभाव बालकस सेथ अनुन्य।
पंडिथ महेश्वरनाथ जी ओस्य पानु गाटुल्य तु गम्भीर। यपोर्य ओस्य शान्त स्वभावुक्य ति।

नाराण जुवुञ जिठ्य सन्तान आसनु मोखु ओस यिमन पनुनिस लोकटिस भोयिस लालु-सोबुन स्यठा च्यपि। गृहस्थी ओसिथ ओस यिमव शैव-त्रिक-दर्शनुक व्पदीश श्री स्वामीराम जी महाराजस निशिय रोटुमुत, यिहन्ज सीवा यि सोरुय परिवार ओस स्यठा लोलु तु भक्ति-भावनायि सान करान। वोञ सपुद महेश्यर टोठ स्यठा बेसबर लालु-सोबुञ दशा बुछिथ। पानस ताम रूदु सुय नु। पनुनि शान्त तु मुद्यरि वोणी मन्ज वोनुन अमिस कुन-'लालु सोब। तोह्य क्याजि छिवु नु अंछय मुचुरान? तलु स म्य सुत्य कर कथ।' किहिञ ति जवाब म्यूल नु अंमिस। वुह मिनट गयि लालु सोब आसिहे कथ ताम आनन्दस मंज। मगर बोय सोब ह्यतिन बेसबर गछित परेशांनी हंन्दिस आलमस मंज वातञ। अति गयि सारिय हयबुंगु क्षणुमात्रस मंज। अति सपुद्य वोञ सारिय प्रसन्न मगर आश्चरस दिववुञ यिहन्ज यि दशा रूज अति सारिञ सनिथ तु खंनिथ। आंस्य लालु-यपअस्य ध्यानमय रोजान यलि ति तिम अंछय वटिथ आंस्य सिद्धासनस मंज ब्यहान, बस ततिय आंस्य बडि-बंडिसुन्दिस ध्यानस मंज मगन गछान। जन ति आंस्य बेह्यस गछान। यि वुछिथ लंज्य मोलिस-माजि फिकिर। तिमव निव यि बालुक पानस सुत्य स्वामी राम जी महाराजस निश तिहिन्दिस आश्रमस प्यठ। दोशुवय बोचव कोर यिमन भक्ति भावनायि सान गुल्य-गन्डिथ प्रणाम तु वोनुहस- 'महाराज। यि बालुक छु अंछय वटिथ तु छुपु करिथुय कुतिस कालस रोजान। मंजु छयस जन तु लारुनि गछान। अमिस कर्यतव पाठ्हन तु गछिहे ठीक।'

महाराजन कर अमिस नजुरेहना तु व्नुनख-'गंछिव मु अन्यूस सेथ। यि छु ओरय पंपिथ आमुत। यि अंमिस छु गोमुत ति गछ्यतन म्य। कलस प्यठ गछेचस थनि रचिहेना थवुञ तु बस।'

यपार्य गन्यव महेश्वरनाथ जियस अलौकिक प्रेम लालु सोबुन तु वोञ आंस्य पानुवुञ कुनि-कुनि कथाह बाथाह करान। यि ओस सिरिफ परमार्थ चर्चा अंथ्य मंज पृछुख अमिस - 'तोह्य क्याह छिवु अंछय वंटिथ बीहिथ अनुभव करान।' लालु-सोबन द्युतुख स्यदि स्योद जवाब - 'बु छुसन बडि - बोंड वुछान।' मंजु ओस्य मोय सोबस दपान जि वुछून हुक्या छु क्युथ तीजुवान तु सुन्दर। मगर तिमव ह्योक नु चीनिथ।

म्य भासान यि छु अंन्द्धर्युमुय अनुभव युस पतु न्यबर ति छु छट कडान, ब्यंयि नु केंह ति। उपनिषद् छि अमिचिय वखनय यिथु पांठ्य करान-

न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः॥

जीवस यंलि परमेश्वरस सुत्य म्युल छु सपदान अम्युक अनुभव छुनु कांह ति वंनिथ ह्यकान। तमिस छि सिरिफ पनुञ शुद्ध अन्तःकरणुय योत्य अति साक्षी रोजान। शायद आसिहे अमिस युथुय अनुभव सपुदमुत तु तवय वोनुन 'बेडि-बोड'। यिमव आसिहे

विश्वात्मा Universal self अनुभव कोरमुत। यि ओस यिमन पनुनि प्रानि जन्मकुय संस्कार वोत्लिथ आमुत तु यि यूग ओसुख स्यद्ध करुन तं पूर-पोठच अन्द वातनावुन यथ जन्मस मंज यमि बापथ युहुन्द आविर्भाव सपुद। भगवान् कृष्ण छु पनुनिसम्यिथरस तु शिष्य अर्जन दीवस वनान–

'पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः॥'

'अख यूगी छु पनुनि पंतिमि जन्मु कि दृढ. तु श्रद्धा सस्ति अभ्यास किनिय न्यांव जन्म धअरिथ पनुन यूग स्यद्ध करनस कुनुय अछयन्न पांठच तंथ्य सुत्य नित्य-निरन्तर रोज़ान।' यिथिस अलौकिक बालक सुन्द्य अनुभव बूजिथ आंस्य अति गाटुल्य जिठच तु जाननवोल्य महापुरुष आश्चरस गंछिथ यिय वनान जि यि छु यूगभ्रष्ट।

यथ जगतस मंज छि कांत्याहजन्म ह्यवान रुत्य तु गाटुल्य ति छि ज्यवान यिहुन्ज बुद्ध स्यठा तेज तु सूक्ष्म छि आसान। यिमन छि अपर्य अछर आसान। तथ्य छे वनान Intutional intelligence यिछ हिश मिसालु छि स्यठा मेलान। आश्चर छु सपदान, यलि यि बोजान छि जि आद्य शंकराचार्यन ओस आंठु वुहरिसय वीद तु शास्त्र परिथ पनुनि मोलुल्य जिन्दगी मंज पतु शुराहिमिस बरियस ताम 'प्रस्थान त्रयी' यानि ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् त श्रीमद्भगवद्गीतायि हंन्ज मशहूर तु मोलुल टीका लीछयमुच। परमहंस रामकृष्ण आंस्य निरक्षर सन्त मगर मोख मंजु आंस्य शास्त्रुय वनान तु असुलुक वोपुदीश करानं यिमुवुय ओस नरेन्द्रनाथस यानि स्वामी विवेकानन्दस-पनुञ दया तु अपार अनुग्रह कोरुमुत। वेंकटरमण या रमण महर्षि ति आंस्य निरा अनपढ मगर यिमुवुय अपर्य अछरव किञ कोर तिमव, द्वस्तिस जगतस मन्ज 'Who Am I?' जाननुक प्रचार तु वोपुदीश। कंत्याहन साधकन म्यूल यिमन निश पनुनिसाधनायि हुन्द समाधान न्यबरिमि मुल्कुक अख रुत दांनिश्वर पॉल ब्रन्टन फ्यूर सांरिसुय हिन्दुस्तानस पनुञ अध्यात्मुच वथ छाण्डनि योसु तमिस सोरुय छण्डिथ पतु रमण महर्षियस निशिय मीज्य। यतिनस छु यि वनुन वोजिब भासान जि सअञस गुरु महाराजस ति ओस अपार आनन्द रमण महर्षियस निश प्राप्त सपुदमुत तु ओसहस दृष्टि-दीक्षा कआंरुमुच।

मतलब छु जि स्वरूपलाभ प्रावनु बापथ या वनव पजर-पज़ुरावनु बापथ ह्यकि नु जांह ति अमिस परमार्थ साधकस यमि संसारूक कांह ति ऐश्वर्य या कांह ति गरीबी अमि निश रुकोविथ। अमि तल छु यिय तरान फिक्रि जि परमार्थ जाननुच बुद्ध छि तोत ताम जन्मान्तरन मंज शुद्ध तु स्यद्ध बनान रोजान योत ताम सु पूरिपूर स्यद्ध छि सपुदान। यिछ हिश बुद्ध छि 'नित्यमेव नवनवम्' यानि प्रथ विजि नवुय नंवु आसान। अति छुनु कमजूरी हुन्द कांह नामो-निशानुय। भगवान् कृष्ण हु यि वंनिथ अर्जन दीवस पूरु ह्यस दिवान यलि सु युद्धभूमि प्यठ कंम्पान तु व्यसुरान छु –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तत्र विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति॥

'ही टाठि पजर पज़ुरावन वालि। यंमि शरीर कि नाश सपुदन सूत्य छि नु जांह ति मनुष्य सुन्ज प्रोवुमुच शुद्ध-बुद्ध न यथ संसारस तु न परलोकस मंज़ुय जायि गछान। म्यानि टाठि। परमार्थस जानुनुच यछा थवनवलिस छनु, पॅज्य पोठ्य, जांह हि दुरगथ सपदान, यि छु निश्चय।'

'आहन माहरा यिय हय छु पजर यंमिस बालकस मुतल्लक'— सारिय दांनिश्वरव, गाटुल्यव तु प्रबुद्ध विद्वानव वञ यिछिय कुनिय कथा सारिञ द्राव वांणी मंजु जि अेक्य योगभ्रष्टन छु जन्म ह्युतुमुत ति ह्यचख वखुनय कंरिथ प्रमाण ति दिञ—

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते'।

'युथ ह्युव योगभ्रष्ट छु अकिस रुतिस, गाटलिस तु श्रूचिस घरस मंज तु परिवारस मंज जन्म ह्यवान।'

यिथ्य दयि लोलु भरित्य छि पनुञ घ्यानमय जिन्दगी व्यस्तार दिनु बापथ पेअ सपदान। यिमव छु ज़िन्दगी हुन्द लुबि-लुबाब च्यूनुमुत आसान। यिम छे असि हिव्यन आम लूकन हिछिनावनु बापथ तु उद्धार करनुचि वेरि जन्म ह्यवान। तमिस 'बडि-बंडचसुन्द' ह्यस दिनु बापथ छि यिम यूगी महापो्रुष प्रथ विजि उद्यत रोजान ति क्याजि असि छु मशरफन नाल वो्लुमुत तु सोन मनु - आंईन छु मलु बंरिथ। अवय छुनु परमात्मदीव सुन्द ह्यस असि प्रथ विजि रोजान। पनुन मन तु अन्तः करण साफ केर्य केर्य छु अथ ब्येय ब्ययि मल खसान तवय छि अस्य यथ ज्यतु मर किस जालसे मंजय ह्यनु यिवान। तवय छिनु असि यिम मोलुल्य वीदु-वाक्य गतार्थ गछान—

''सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव''

'यि सोरुय जगथ तु बु छुस तमिसुय बडिबंडचसुन्दुय स्वरूप।'

'नेह नानास्ति किञ्चन'

'यि छे सोरुय Unity in diversity — नानातायि मंज़ुय एकता।'

दोयिमि तरफय वुछव तु यिम परमार्थ साघक छि शास्त्र बूजिथ स्वय कथ यकदम समझान अगर चि तिमन स्वरूपलाभ प्राप्त करनु बापथ छि कुनि समुयिच जरूरत प्यवान। अमिय पुरजोर अध्यात्म-आनन्दुक अनुभव ओस अमिस बालकस बालु-पानु प्यठु यिमव अंज्य बहिक्र घटपंछय बअश दोह ओस को्दुरतचि फोलुवुनि तु मोलुवुनि ऋषिवारि कशीरि मंज जन्म धोरमुत।

व्लिव वछि-वोलिञ्जि भावु-भंरुत प्रणाम करव यिमन सन्त-योगी-महापुरुष गुरु महाराजस उत्पलदेव जियिनि यंमि श्लोक सुत्य—

न ध्यायतो न जपतः स्याद् यस्याऽविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभसः तं नमो भक्तिशालिनम्॥ (१/१)

'येमिस ध्यान, जप तु व्यज रोस्त, अनायासुय भगवान् शिव सुन्दि प्रकाश-स्वरूपुक अनुभव छु रंटय्-रोस्त सपदान तमिसुय अलौकिक भक्त महापुरुषस छु सोन दण्डवत् प्रणाम।''

जय गुरुदेव॥

जय गुरुदेव॥

जय गुरुदेव॥

(सौजन्य-सन्त समागम शोध संस्थान, जम्मू)

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY HH ISHWARSWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Guptaganga, Ishber (Nishat), Srinagar-191021 (Kashmir)

2-Mohinder Nagar, Canal Road, Jammu-180016

5 R / D, Sarita Vihar, New Delhi-110044

Festivals & Rituals for the Year 2059 (BK)-2002-03 (AD)

13.04.2002.	Saturday	Navreh (New Year) and Baisakhi.
09.05.2002.	Thursday	Janma Divas Jayanti and (सौर) Saur-Janma Divas of H.H. Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj.
18.05.2002.	Saturday	Linga Pratishtha Sri Amriteshwar Bhairav Temple Ishber.
23.05.2002.	Thursday	Linga Pratishtha Sri Amriteshwar Bhairav Temple, Jammu.
24.07.2002.	Wednesday	Shri Guru Purnima.
22.08.2002.	Thursday	Sravan Purnima.
30.08.2002.	Friday.	Janma Ashtami.
23.09.2002.	Monday.	(पितृपक्ष) Pitrapaksh-Jagh Swami Mahatab Kak Ji Maharaj.
24.09.2002.	Tuesday.	(पितृपक्ष) Pitrapaksh-Jagh Sushri Sharika Devi Ji.
25.09.2002.	Wednesday	Nirvan Jayanti (Yearly-Jagh) of H. H. Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj.
05.10.2002.	Saturday	(पितृपक्ष) Pitrapaksh-Jagh Swami Ram Ji Maharaj.
08.11.2002.	Friday	Janma Jayanti Swami Mahatab Kak Ji Maharaj.
06.12.2002.	Friday	Janma Jayanti Sushri Sharika Devi Ji.
31.12.2002.	Tuesday	Janma Jayanti Swami Ram Ji Maharaj
30.01.2003.	Thursday	Yearly Jagh Swami Ram Ji Maharaj.
19.02.2003.	Wednesday	Yearly Jagh Sushri Sharika Devi Ji.
28.02.2003.	Friday	Maha Shivaratri.
04.03.2003.	Tuesday	Yearly Jagh Swami Mahatab Kak Ji.

Published for general information.

Sd- (IKRaina)
Trustee/Secretary
Ishwar Ashram Trust

ईश्वराश्रम ट्रस्ट

(ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज द्वारा स्थापित)
गुप्तागंगा, इशबर (निशात), श्रीनगर -191 021 (कश्मीर)
2- महेन्द्र नगर, कनाल रोड, जम्मू -180 016
5, आर/डी सरिता विहार, नई दिल्ली -110 044

वार्षिक त्यौहार व महोत्सव 2059 (विक्रमी) 2002 – 03 (ईस्वी)

चैत्र शु. प्रति.	अप्रैल 13, 2002	शनिवार	नवरेह (नव वर्ष) तथा बैसाखी
वै. कृ. द्वाद.	मई 9, 2002	गुरुवार	ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज जन्म जयन्ती तथा सौर-जन्म वर्ष दिवस
वै. शु. षष्ठी	मई 18, 2002	शनिवार	लिङ्गप्रतिष्ठा जयन्ती श्री अमृतेश्वरभैरव मंदिर, इशबर
वै. शु. द्वाद.	मई 23, 2002	गुरुवार	लिङ्गप्रतिष्ठा जयन्ती श्री अमृतेश्वरभैरव मंदिर, जम्मू
आषाढ शु. पूर्णि.	जुलाई 24, 2002	बुधवार	श्रीगुरुपूर्णिमा
श्रावण शु. पूर्णि.	अगस्त 22, 2002	गुरुवार	श्रावणपूर्णिमाा
भाद्र कृ. सप्तमी	अगस्त 30, 2002	शुक्रवार	जन्माष्टमी
आश्विन कृ. दि.	सितम्बर 23, 2002	सोमवार	पितृपक्ष जग स्वामी महताबकाक जी महाराज
आश्विन कृ. तृती.	सितम्बर 24, 2002	मंगलवार	पितृपक्ष जग सुश्रीशारिका देवी जी
आश्विन कृ. चतु.	सितम्बर 25, 2002	बुधवार	(निर्वाण जयन्ती) वार्षिक जग ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज
आश्विन कृ. चतुर्द.	अक्टूबर 5, 2002	शनिवार	पितृपक्ष जग स्वामी राम जी महाराज
कार्तिक शु. चतु.	नवम्बर 8, 2002	शुक्रवार	स्वामी महताबकाक जी महाराज जन्म जयन्ती
मार्ग शु. द्वि.	दिसम्बर 6, 2002	शुक्रवार	सुश्रीशारिका देवी जी जन्म जयन्ती
पौष कृ. द्वाद.	दिसम्बर 31, 2002	मंगलवार	स्वामी राम जी महाराज जन्म जयन्ती
माघ कृ. त्रयो.	जनवरी 30, 2003	गुरुवार	वार्षिक जग स्वामी राम जी महाराज
फाल्गुन कृ. तृती.	फरवरी 19, 2003	बुधवार	वार्षिक जग सुश्रीशारिका देवी जी
फाल्गुन कृ. त्रयो.	फरवरी 28, 2003	शुक्रवार	महाशिवरात्रि
फाल्गुन शु. प्रति.	मार्च 4,, 2003	मंगलवार	वार्षिक जग स्वामी महताबकाक जी महाराज

(इन्द्रकृष्ण रैना)
ट्रस्टी तथा सचिव
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट